ਲਾਸਣ

ਠਾਣਡੇ ਪਾਣੀ ਰੇ ਡਿਭਣੂ

H
784.409 545 2
V 59 L

784.409
5452
V59L

लामण

ठाण्डे पाणी रे डिभणू

(प्रसिद्ध पहाड़ी लोक-गीत)

खेमीराम वर्मा   बालकृष्ण ठाकुर

भूमिका
मौलूराम ठाकुर
An Easy Way To Hindi & Hindi Grammar,
पहाड़ी भापा : कुलुई के विशेष संदर्भ में,
के लेखक द्वारा

देवप्रस्थ साहित्य संगम

सहजराम भवन,
मकान नं० 26, शिमला - 171002

गांव तथा डाकघर झूठी,
तहसील व जिला कुल्लू
(हिमाचच प्रदेश)

हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा अनुमोदित
तथा 800-00 रुपये के अनुदान की सहायता से प्रकाशित ।

प्रकाशक : देवप्रस्थ साहित्य संगम,
१. सहजराम भवन, मकान सं० 26, शिमला-171002
२. गांव व डाकघर भूठी, तहसील व जिला कुल्लू (हि०प्र०)

64278
16/6/82

H
784.4095452
V59 L

।। सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं ।।

मूल्य : पन्द्रह रुपये

Library IIAS, Shimla
H 784.4095452 V 59 L
00064278

मुद्रक : नवीन प्रिंटिंग प्रैस, बिलासपुर (हि०प्र०)

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
१.	प्राक्कथन	४
२.	भूमिका : ... ... प्रणय गीत ६, झूरी ६, गंगी ८, गिद्धा ६, तुक, लय और टेकादि का महत्व १०, पृष्ठ-भूमि में १४, लामण की विशिष्टता १६, काव्यात्मक सजीवता २०, आलंकारिक-सौन्दर्य २२, प्रतीक और बिम्ब २६, छन्द-विधान ३७, रस परिपाक ४२, भाषा सौष्ठव ४५।	५-५५
३.	दोहे-लामण	५६
४.	प्रणय	६२
५.	संयोग	६७
६.	वियोग	७४
७.	हास्य-व्यंग्य	८८
८.	आशा-निराशा	६५
६	भाग्य	१०४
१०.	प्रतीक्षा	११२
११.	स्मृति	१२१
१२.	जीवन की सचाइयां	१२६
१३.	फुटकर	१३०

प्राक्कथन

जीवन में कुछ काम अनायास हो जाया करते हैं, इस बात का एहसास आज हमें हो रहा है। जब हम दोनों एक दूसरे को जानते भी न थे और अलग-अलग स्थान पर बैठ कर हम लामण इकट्ठा करने में लगे थे तो यह केवल साधारण शुग़ल का विषय था। 'लामण इकट्ठा करना' शब्द भी भ्रामक हैं। जिस प्रकार हमारे वातावरण में रहने वाले अनेकों गीत-संगीत प्रेमी युवकों को प्रायः नये गीत लिखने का शौक होता है, उसी प्रकार हम भी जब कभी कोई नया लामण सुनते तो उसे अपनी रुचि की पूर्ति के लिए अंकित कर लिया करते थे। संयोग की बात है कि अपने इलाका कुल्लू, जहां हमने इन लामणों को एकत्रित किया था, से बाहर शिमला में हम दोनों का मिलन हुआ। इस संयोग को हम ईश्वरीय-देन समझते हैं। अतः इसी संयोग से आज जब वही पुराना शौक किसी विशिष्ट उपलब्धि में बदल गया है तब प्रसन्नता तो अवश्य होती है।

इधर कुछ वर्षों से पहाड़ी भाषा, लोक साहित्य और संस्कृति की ओर विद्वानों और संस्थानों का विशेष ध्यान आकर्षित हुआ है। सरकार द्वारा स्थापित 'हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी' इस दिशा में प्रदेश में महत्त्वपूर्ण तथा सराहनीय कार्य कर रही है। अकादमी के सहयोग और प्रोत्सासन से अनेक विशिष्ट कृतियां प्रकाश में आई हैं। अकादमी द्वारा दिए गए सहायता अनुदान के फलस्वरूप ही हमारे एकत्रित लामणों को वर्तमान रूप मिला है। इसके लिए हम अकादमी के अत्यन्त आभारी हैं।

पुस्तक में प्रत्येक लामण का शाब्दिक अर्थ देने का प्रयास किया गया है। परन्तु हमें खेद है कि कुछ पहाड़ी शब्दों के हिन्दी में समानार्थक शब्द नहीं मिल सके हैं। इसे चाहे हमारी हिन्दी शब्दावली की कमी समझिए या पहाड़ी शब्दों की अपनी सांस्कृतिक तथा भौगोलिक विशिष्टता, परन्तु यह स्पष्ट है कि कुछ शब्दों के हिन्दी रूप देने में हमें कठिनाई हुई है। हमें आशा है कि पाठकों को स्थान-स्थान पर उचित अर्थ न मिलते हुए भी प्रत्येक लामण का भाव समझने में कठिनाई नहीं होगी।

अन्तिम अध्याय में कुछ लामणों को फुटकर शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है। वास्तव में इनका सम्बन्ध भी पूर्व-कथित विभिन्न विषयों से है और इन्हें इस प्रकार फुटकर में दिखाना अनुचित ही नहीं भ्रान्तिपूर्ण भी है। परन्तु यह सब जानते हुए भी हमें ऐसी श्रेणी दिखानी पड़ी है जिसका मूल कारण यह है कि ये सभी लामण हमें पुस्तक का प्रथम मूल भाग छपने के बाद प्राप्त हुए हैं। आशा है पाठक-वृन्द इसको अन्यथा नहीं लेंगे।

मूल लामणों के आरम्भ में श्री मौलूराम ठाकुर ने विस्तृत भूमिका देकर लामण गीत के सौदर्न्य तथा कलात्मकता पर पूर्ण प्रकाश डाल कर पुस्तक के महत्व को बढ़ाया है। हम इसके लिए उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

खेमीराम वर्मा

बालकृष्ण ठाकुर

भूमिका

सभ्यता के चमत्कारपूर्ण विकास के चरण में आज मनुष्य उस स्थान पर खड़ा है जहां से वह हर पिछली वस्तु को तुच्छ और हीन समझने के लिए विवश होता जा रहा है। भौतिक भावना में ग्रस्त मानव का मन किसी ऐसी वस्तु में लग नहीं पाता जिसमें उसे आर्थिक लाभ नज़र न आता हो। हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के स्तर को यांत्रिक और भौतिक मान-दण्डों द्वारा जांचा जाता है। सभ्यता और विकास के इन प्रतिमानों के समक्ष यदि हमारी प्राचीन संस्कृति के समृद्ध अंश हमारी स्मृति से लुप्त हो जाएं तो आश्चर्य नहीं। यदि ऐसी परिस्थितियों में लोक-संस्कृति और साहित्य की सुरक्षा के लिए कोई प्रबुद्ध व्यक्ति प्रयत्न करें तो वे अवश्य ही प्रशंसा के पात्र हैं।

ऐसे प्रयत्नों में ही सर्वश्री खेमीराम वर्मा और बालकृष्ण ठाकुर के प्रयास को देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है। उन्होंने लामणों का संग्रह करके बड़ी देर से अनुभव की जा रही आवश्यकता की पूर्ति की है। लामण हिमाचल प्रदेश और साथ लगते उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में गाया जाने वाला सबसे अधिक लोक–प्रिय गीत है। उनका संग्रह मुख्यतः कुल्लु क्षेत्र से सम्बन्धित है। इससे पूर्व श्री रोशनलाल चौहान ने शिमला जिला के रोहड़ू क्षेत्र के लगभग चार सौ लामण 'पब्बर की लहरें' नामक अपनी पुस्तक में प्रकाशित किए हैं। लामणों का यह सम्भवतः पहला अनुपम संग्रह है। परन्तु लामणों का अर्थ न होने के कारण ये बाहर के पाठकों का अधिक मनोरंजन नहीं कर पाते। इस गीत का संक्षिप्त परिचय देते हुए डा० पद्मचन्द्र काश्यप ने अपनी पुस्तक 'कुलुई लोक साहित्य' में कुछ लामण दिए हैं। डा० गोविन्द चातक ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाली लोक गीत—एक सांस्कृतिक अध्ययन' में उस क्षेत्र में गाए जाने वाले लामण–गीतों का सामान्य परिचय दिया है। इसी तरह भाषा, कला एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश

द्वारा प्रकाशित शोध-पत्रावली (भाग ३) में डा० खुशीराम गौतम ने अपने लेख 'सिरमौरी लोक-साहित्य- एक शास्त्रीय अध्ययन' में सिरमौर क्षेत्र में गाए जाने वाले कुछेक लामण-गीत प्रस्तुत किए हैं। इन सब प्रकाशनों में सर्वश्री खेमीराम वर्मा और बालकृष्ण ठाकुर का प्रस्तुत संग्रह सर्वाधिक विस्तृत है। और प्रत्येक लामण का अर्थ देकर उन्होंने इसे और अधिक उपयुक्त बनाया है। यही नहीं इन लामण-गीतों को संयोग, वियोग, भाग्य, हास्य, आशा-निराशा आदि विभिन्न शीर्षों के अधीन विस्तार से देकर उन्होंने इस धारणा को भी झुठलाया है कि लामण गीतों में शृंगार के सिवाए कुछ और नहीं है।

प्रणय गीत

मूल रूप में लामण एक प्रणय लोक गीत है। विषय की दृष्टि से झूरी गिढ़ा, गंगी, भौंरू, बाह्मणू, दोहा, झंझोटी आदि अनेक अन्य गीत प्रणय-गीत की श्रेणी में आते हैं। ये सभी शृंगार और प्रणय की अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं। यूं तो प्रणय गीतों की संख्या और इनका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इन्हें किन्हीं मान्य श्रेणियों में क्रम-बद्ध करना कठिन है; परन्तु कुछ एक प्रणय गीत विषय की दृष्टि से नितान्त समान हैं और वे एक ही गीत के भिन्न नाम लगते हैं। केवल शैली और स्थान के आधार पर ही इनमें भेद व्यक्त होता है। यहां तक कि एक ही पद **"फूली कौरो फुलटू, डाली फुलला कूरा; तुम्हें जाणा दूरा-खे हामें लागणा बुरा"** झूरी में भी गाया जाता है, लामण में भी, गंगी, दोहा और भौंरू में भी।

झूरी का शाब्दिक अर्थ 'प्रेम' या 'प्रेमिका' है। इस बात की पुष्टि इस गीत में प्रयुक्त झूरी शब्द के प्रयोग से ही स्पष्ट हो जाती है :

झूरी री हाखटीए जिशी चानणी री लोईए।
इन्हा बोलो हाखटीए, घौरो घाटो ते खोईए॥

'प्रेमिका की आंखें जैसे चन्द्रमा की चांदनी (प्रकाश) है। इन आंखों ने (मुझे) घर और घाट से खो दिया है अर्थात् कहीं का न रखा है'। कुछ विद्वान 'झूरी' शब्द का सम्बन्ध देश के अन्य भागों में गाए जाने वाले 'झूमर' गीत से जोड़तेहैं। परन्तु झूमर वाली बात झूरी में नहीं है, झूमर प्राय: स्त्रियों का गीत है और झूम–झूम कर गाने की भावना इसकी मुख्य विशेषता है। परन्तु झूरी पुरुषों का इतना ही प्रिय गीत है जितना नारी का, और यह मुख्यत: एकान्त और आबादी से दूर खुले स्थान का गीत है और झूमर में जो संगीत के संयोग की आवश्यकता है झूरी में बिलकुल अनुपस्थित है। 'झूरी' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'जारय' से अधिक सम्भाव्य है। ध्वनि परिवर्तन की अनुरूपता

के अतिरिक्त भाव-अभिव्यक्ति के आधार पर भी इस सम्बन्ध की पुष्टि होती है। सभी झूरी गीतों में वैवाहिक सीमाओं से बाहर अवैध प्रेम की प्रधानता रहती है। आदर्श प्रेम की पवित्रता और नैतिकता झूरी गीतों में कम ही मिलती है।

चूड़ी रा कोथरा, तेरे लोजड़े कानो।
भूखे खे देली टुकड़ा, लाली उमरा रा सानो।।

तेरे सुन्दर कान चूड़–धार की कस्तूरी मृगी की भांति है। भूखे को टुकड़ा देगी तो उमर भर का एहसान रहेगा।

निस्सन्देह कतिपय झूरी गीतों में जीवन की यथार्थता का भी चमत्कार पूर्ण वर्णन मिलता है, और ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि जीवन सर्वदा हर्ष, उल्लास, प्रसन्नता और शृंगार की पृष्ठ भूमि नहीं है, ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की भी यथार्थ स्थली है, जिन के थपेड़े कटु अनुभव का प्रदान जीवन भर के लिए दे देते हैं। ऐसी स्थिति में झूरी के कुछ पद प्रेम वासना के विस्तृत और पारम्परिक क्षेत्र से हट कर जीवन के यथार्थ पहलुओं का बखान करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु मूल रूप में झूरी का सीधा सम्बन्ध छिछले प्रेमासक्ति से है। प्रेम की विशुद्धता, साधुता, गम्भीरता, गुरुता, शुचिता, और निष्ठा की अपेक्षा क्षणिक उल्लास, उन्माद, विनोद-प्रियता रूप की लालसापूर्ण अर्चना, क्षणिक आसक्ति की ही इन गीतों में प्रधानता रहती है।

भांडे धोंदी नाणीए, भांडे धोए भीतीए डेवे।
कीले रांडे बदाउओ, कीले नी जोखटी शेवे।।

"बर्तन साफ करती नाणी! बर्तन साफ कर अन्दर मत भाग जाना। क्यों री प्रेयसी! तू जलती हुई लकड़ी के प्रकाश को बुझाती क्यों नहीं है।" ऐसी परिस्थितियों में विलास, उल्लास और आसक्ति ही मन पर प्रभावी हो जाता है तथा जीवन के केवल वर्तमान क्षणिक सुख के कुछ और नजर नहीं आता तथा अवैध प्यार का स्वर झूरी का मुख्य विषय बना रहता है। इसी अवैध प्रेम की प्रधानता के कारण 'झूरी' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'जारय' से पुष्ट हो जाता है। इस का यह अर्थ नहीं कि झूरी के अन्तर्गत सभी गीत प्रेम-वासना आसक्ति, अवैध-प्रेम और क्षणिक संयोग सुख की रसानुभूति के ही प्रतीक हैं। जैसे जीवन को केवल सुख-सम्पन्नता का ही रंगमंच समझना अपने आप को धोखा देना है, वैसे ही झूरी या किसी भी लोक गीत में केवल एक ही रस की अनुभूति स्वीकार करना असत्य है। झूरी में जीवन के अन्य पहलू भी प्रदर्शित होते हैं परन्तु लगता है कि मूल रूप में 'झूरी' शब्द अवैध प्रेम के लिए प्रयुक्त होता रहा हो और बाद में ऐसी आसक्ति के लोक-गीत ने 'झूरी' का नाम धारण किया हो। वैसे झूरी लामनों में प्रश्न-उत्तर की परिपाटी बड़ी व्यापक है—

प्रश्न और उत्तर, उत्तर और प्रत्युत्तरों का तांता सा लगता है और इस नोक-झोंक में प्राय: प्रेमासक्ति का ही ताना-वाना वुनता रहता है। परन्तु इन प्रश्नोत्तरों तथा लालड़ी, भावारूपीए आदि अनेक अन्य लोक-गीतों के प्रश्नोत्तरों में काफी भेद लगता है। अन्य लोक गीतों में जहां गायक और गायिका आमने-सामने होते हैं, और साथ-साथ खड़े होते हैं, गीतों के प्रश्न और उत्तर उस समय की मन:स्थिति और गीत के दौर पर निर्भर करते हैं। गाते गाते जिधर को प्रवाह चल पड़ा वैसे ही अवसर पर ही तुरन्त प्रश्न और उत्तर वना लिये जाते हैं। परन्तु झूरी और लामण आदि गीतों में प्राय: पहले के निर्णीत प्रश्न-उत्तर होते हैं, जिन्हें पहाड़ की एक चोटी पर बैठा गायक और दूसरी पर बैठी गायिका दोहराते हैं। जौनसर-वावर, सिरमौर और महासू क्षेत्र झूरी गीतों के गढ़ हैं। स्थान स्थान पर इनकी लय और स्वर में भिन्नता है। विभिन्न स्थानों की भिन्न लय के कारण इन्हें किसी ताल पर आधारित नहीं किया जा सकता है। लम्वी और एकान्त लय ही इस की परिचायिका हैं। झूरी के सर्वाधिक प्रचलित रूप में पूर्ण झूरी को चार पदों में वांटा जाता है, और हर पद के वाद लम्वी लय की ध्वनि रहती है:—

काटी लैणी कुकड़ी रे ओऽ ऽ ऽ········ (१)
बाही लेणे फेबरेऽ ऽ ऽ ··············· (२)
जे तू डरे दुनिया खेऽ ऽ ऽ............ (३)
रह बोलो झूरीए आपणे घरे········· (४)

पहला और दूसरा पद एक ही सांस में गाया जाता है परन्तु दूसरे की अपेक्षा पहले पद के अन्त में स्वर अधिक लम्वा रहता है। यही स्थिति तीसरे और चौथे पद की रहती है।

गंगी प्रणय गीत का दूसरा रूप है। विलासपुर और सोलन का अर्की क्षेत्र इस के प्रिय स्थान हैं, यद्यपि यह हिमाचल के निचले भागों में सभी जगह गाया जाता है। सम्भवत: गंगी किसी व्यक्ति विशेष का नाम रहा हो। उस की किसी घटना पर गंगी नाम से गीत वना और अब लोक-गीत के रूप में सर्व-व्यापी बन गया है। अन्य प्रणय गीतों की तरह गंगी में भी साधारणत: प्रथम पंक्ति निरर्थक होती है अर्थात् मूल भाव से सम्वन्ध नहीं रखती, तथा दूसरी पंक्ति सार्थक अथवा मूल भाव की परिचायिका होती है। परन्तु गंगी की दूसरी पंक्ति झूरी की दूसरी पंक्ति से अधिक लम्वी होती है, तथा सामान्यत: तीन पद देखने को लगते हैं:—

फूल फुली गया लो डाले तूनीए,
फिकर नी करनी छोहरीए,
असां पुज्जी जाणा ठारह-उनीए।

झूरी की तरह ही गंगी भी कई तरह से गाई जाती है। स्थान-२ पर इस की लय और ताल भिन्न है। लय ताल ही नहीं गीत के शब्दों की पुनरावृति भी प्रायः एक समान नहीं है। निम्न-महासू में गायक गाते समय लय के आधार पर गंगी गीत को चार पदों में बांटता है। पहले सांस में पहली पंक्ति के दो पद गाए जाते हैं, परन्तु हर दो पद के अन्त में स्वर अधिक देर तक लम्बा रहता है। तीसरा और चौथा पद अलग- अलग सांसों में लम्बी लय में गाया जाता है :—

चिट्टा चादरू ओऽ ऽ ऽ
रही गया टिकरे एऽ ऽ ऽ
खून सूका ओ पाणीए बिणा
जिंद सूकीऽ ऽ ऽ तेरे फिकरेऽ ऽ ऽ

गायक तुरन्त गीत समाप्त नहीं करता, बल्कि अन्तिम दो पदों 'खून सूका पाणीए बिणा, जिंद सूकी तेरे फिकरे' को पुनः उसी स्वर में गाता है। एक दूसरी ताल–लय में गाई जाने वाली गंगी में गीत को तीन पदों में बांटा जाता हैं तथा पहले और तीसरे पदों की पुनरावृति की जाती है। इस में सांस पद के अन्त में न लिया जा कर अगले पद के पहले अक्षर को बोल कर लिया जाता है :—

नमे समा रा आना चलूराऽ ऽ ऽ
नमे, समा रा आना चलूराऽ ऽ
दिलड़ू नी लाणा छोहरूआ।
बेइमाना, रा जमाना चलूरा॥
हाये ! बेइमाना रा जमाना चलूरा।

गंगी नाम से ऊपरी-महासू और कुल्लू में अन्य लोक गीत भी प्रचलित हैं, परन्तु वे प्रणय गीत की श्रेणी में नहीं आते।

गिद्धा मूल रूप में स्त्रियों का प्रणय गीत है, जो प्रायः सावन महीने में गाया जाता है। तब स्त्रियां गांव से बाहर किसी पुराने और बड़े पीपल आदि के वृक्ष पर झूले डालती हैं :—

सौण महीना दिन गिद्धा रे,
सभी सहेलियां आईयां।
भिज गई रूह मित्रा,
शाम घटा चढ़ आईयां।

परन्तु अब गिद्धा प्रायः हर समय गाया जाता है, यद्यपि सावन महीना अब भी गिद्धा गीतों का शुभ समय है जो तीजों का त्यौहार ले कर आता है।

गिद्धा गीत में पहली पंक्ति द्रुतलय में गाई तथा दोहराई जाती है, तथा दूसरी पंक्ति किंचित विलम्बित ताल में गाई जाती है : —

सूवे जानी मेरे गला रा हार,
सूवे जानी मेरे गला रा हार।
सोने री गड़वी गंगा जल पाणी,
पी के पलाई के तू चली जाणा पार।
सूबे जानी मेरे गले रा हार…………

शृंगार गिद्धा का मुख्य विषय है। प्रेम के दो शाश्वत रूप संयोग और वियोग की भावनाओं में ओत प्रोत गिद्धा गीत प्रणय गीतों में विशिष्ट स्थान रखते हैं, परन्तु मिलन की अपेक्षा विरह का इनमें अधिक महत्व रहता है। प्रेमियों के बीच नोंक-झोंक का दौर भी गिद्धा का मुख्य विषय है। प्रेम में बेवफाई का डर और सम्भावना दो दिलों को प्रायः कचोटता रहता है **'तेरी-तेरी खातिर खाणा बणाया, खाई करी फिरी तें लंघी जाणा पार'**। गले का हार जैसा प्यार और अनुराग देने के बाद भी कौन जाने यह प्यार अधूरा छूट जाए। गिद्धा गीतों में प्रेमिका की सुकुमारता और कोमलता की व्याख्या भी बड़ी अनूठी है। भौंरे के बैठने से ही कभी नाक चूर-चूर हो जाता है, और कभी सुन्दर नयन। ऐसे गीतों में भौंरे का उल्लेख द्रष्टव्य है। भ्रमर अपनी रसिक वृति के लिए प्रसिद्ध है। खिले फूल का रस चूसना उस का स्वभाव है। गिद्धा गीत में भौंरा सुन्दरी के मुख पर आ कर बैठ जाए तो मुख को क्या समझना चाहिए !

तुक, लय और टेकादि का महत्व

लोक गीतों में सरसता और गेयता की सर्वत्र प्रधानता रहती है। ये सीधे-सादे शब्दों में स्वाभाविक रूप में रचे होते हैं और इन में कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं होता। गेय काव्य में प्रायः वाद्य की अपेक्षा रहती है, परन्तु लोक-गीत वाद्ययन्त्रों सहित भी गाए जाते हैं और बिना वाद्य-यंत्र के भी उनकी सरसता कम नहीं होती। इन यन्त्रों के अभाव को लोक कवि और गायक कई साधनों से पूरा करता है। इन साधनों में **लय, तुक, टेक** और **पुनरावृति** का विशेष महत्व है। पहाड़ी प्रणय गीत मुख्यतः वाद्य यंत्रों रहित गाए जाते हैं। परन्तु इनकी गेयता इतनी सुरस और स्वाभाविक होती है कि वाद्य-यंत्रों का अभाव इनके माधुर्य को आंच नहीं लगने देता।

लय की सहायता से लोक गायक श्रोता को मंत्र मुग्ध कर देता है। किसी पंक्ति में शब्दों की कमी को गायक लय की सहायता से पूरा करता है। गीत की सरसता को स्थापित रखने के लिए गायक आवश्यकता अनुसार लघु

स्वर को दीर्घ और दीर्घ को लघु कर लेता है। गायक के मधुर कंठ से लयपूर्ण उच्चारण अनुपम रस का संचार करता है। लयात्मक शैली से गायक श्रोताओं पर चमत्कारपूर्ण प्रभाव उत्पन्न करता है। झूरी और लामण गीतों का जादूभरा असर लय के कारण ही है। स्वर–माधुर्य में एक एक अक्षर को गायिका जितनी दीर्घ लय देती है उतना ही उसका प्रभाव अधिक होता है। पंक्ति में एकरूपता का एक मात्र साधन इनकी लय ही है।

झूरी, लामण आदि प्रणय गीतों की दूसरी विशेषता **तुक** का प्रयोग है। वहुत कम उदाहरण देखने में आते हैं जहां ये गीत तुकान्त न हों।

दूसे लाये लामणा बियाली लाये गेता।
ईणा जाणाऊ नाणा दूई होंदे थे मीने दूसा।।

यह लामण अतुकान्त लगता है, परन्तु इस में भी आ स्वर का तुक है। परन्तु इस प्रकार के तुक इन गीतों में तुक ही नहीं माने जाते। तुकान्त का होना आवश्यक है और यह तुक स्पष्ट और व्यापक होना चाहिए। तुकान्त झूरी-गीत कानों को माधुर्य देते हैं, इसलिए इसका पालन कठोरता से किया जाता है। इसी कठोर पालन के फलस्वरूप ही तुक की दृष्टि से इन गीतों को दो श्रेणियों में वांटा जाता है। सार्थक तुकान्त तथा निरर्थक तुकान्त। सार्थक तुकान्त से अभिप्राय: ऐसे तुक हैं जो दोनों पंक्तियों में शब्दान्त और अर्थ के आधार पर समान हों। दोनों में सम्बन्ध प्रत्यक्ष और प्रमाणित हो, जैसे—

झूरी नी लाणी, झूरी सावी दी बुरी।
सांसो फिरो मनो भीतरी, जिशी कोयला छुरी।।

यहां दोनों पंक्तियों के अंत में 'बुरी' और 'छुरी' शब्द हैं जो तुक के आधार पर ठीक उतरते हैं, साथ ही दोनों पंक्तियों का भाव भी एक ही है जो प्रेम की व्याख्या करता है अर्थात 'प्रेम नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रेम सबसे बुरी वस्तु है, सांस मन के भीतर ऐसा फिरता है जैसे दो–धारी छुरी'। यह सार्थक तुकान्त का एक उदाहरण है। परन्तु इन गीतों में प्रधानता उन तुकों की है जो सार्थक नहीं हैं। चूंकी इन गीतों में तुकों का पालन कठोरता से किया जाता है, इसलिए ये प्राय: निरर्थक होते हैं। यहां 'निरर्थक' से अभिप्राय: स्पष्ट हो जाना चाहिए। निरर्थक तुक का अर्थ अर्थहीन नहीं है। अर्थ तो होता है, परन्तु उसका मूल उद्द`श्य से कोई सम्वन्ध नहीं होता। अर्थात् प्रथम पंक्ति अपने आप में पूर्ण होती है, और दूसरी पंक्ति अपने आप में। परन्तु मूल वात तो गायक ने दूसरी पंक्ति में करनी होती है, और पहली पंक्ति केवल तुक की पूर्ति के लिए जोड़ी होती है :

फूली करो फुलणु, डाली फुलोला कांगो।
खाओ-पीओ हामे मुकता तेरे हाथो रा मांगो।।

यहां 'कांगो' और 'मांगो' तुक के आधार पर समान हैं। परन्तु पहली पंक्ति का दूसरी पंक्ति से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है। गायक ने बात केवल इतनी करनी है कि 'मैंने खाया पिया तो बहुत है, केवल तुम्हारे हाथ का मांगता हूं'। परन्तु चूंकि उसने बात तुक में करनी है अतः 'फूल खिलता है फूल और डाली पर खिला है कांगो का फूल' पंक्ति जोड़ दी है। बात केवल दूसरी पंक्ति के अन्तिम शब्द 'मांगो' के लिए तुक के रूप में 'कांगो' की तलाश है।

यूं तो अधिकतः झूरी, लामण आदि गीतों की तुकान्त पद्धति निरर्थक लगती है, परन्तु यदि गहराई से देखा जाए तो दोनों पंक्तियों के भावों में बड़ा गहरा सम्बन्ध लक्षित होता है। हिमाचल प्रदेश को प्राकृतिक सौंदर्य का महान प्रदान प्राप्त है। अतः इन गीतों के प्रथम पद में तो प्रकृति के चित्रण का संकेत मिलता है और उसी चित्रण का सहारा लेकर दूसरे पद के भाव को पुष्ट किया जाता है, यथा :

भौर फूली भाबरी, फूली ढेके रे बौले।
शोख नी रौजदी चूलू पाणीए, झूरी नी रौजदी गौले ।।

यहां भावरी फूल के खिलने और प्रेमिका की बातों से तृप्ति न होने में कोई साम्य नहीं दीखता। परन्तु गम्भीरता से देखा जाए तो दोनों तुकों के सार्थक होने में सन्देह नहीं रहता। भावरी फूल की सुगन्ध अत्यन्त धीमी होती है, इसे सूंघते रहने की इच्छा हर दम रहती है। भावरी फूल की सुगन्ध से आपकी इच्छा तृप्ति नहीं होती, वह ऐसी ही है जैसे आप की बूंद-बूंद पानी से प्यास नहीं बुझती बल्कि बढ़ती जाती है; और यही स्थिति प्रेयसी की है। उसकी बातों से तृष्णा पूरी नहीं होती। स्पष्ट है कि इन दोनों का आपस में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यूं गम्भीरता से देखा जाए तो जिन गीतों को हम निरर्थक तुकान्त समझते हैं उनकी सार्थकता शीघ्र मालूम हो जाएगी।

तुक की स्थिति इन प्रणय गीतों में दो तरह से पाई जाती है। झूरी, लामण, दोहा, भौंरू आदि में तुक हर पंक्ति के बाद या दूसरे और चौथे पद के अन्त में पाया जाता है। यह बात ऊपर के सभी उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है। परन्तु गंगी में तुक की स्थिति प्रायः पहले और तीसरे चरण के अन्त में मिलती है :

पाणी भरी लेणा डुघड़े नाले,
तौंदिया री धुप देखणी।
दिल लाई लैणा बेठड़े सियाले ।।

यहां 'नाले' पहले पद पर है और 'सियाले' तीसरे पद पर, परन्तु बीच में 'देखणी' बिना तुक के विद्यमान है। गंगी गीत इस दृष्टि से लामण और झूरी से भिन्न हैं।

इन गीतों की रागात्मकता और सरसता का तीसरा साधन **टेक** है। प्रणय गीतों में कई प्रकार के टेक शब्द प्रयुक्त होते हैं, जैसे— वोलो, ओ··· ओ, मोलकुआ, झूरीए, लोभीया, छोरूहआ, छोहरीए आदि। ये माधुर्य आकर्षण के वड़े प्रभावशाली यन्त्र हैं। इन टेक पदों द्वारा गायक न केवल श्रोताओं को गीत के भाव ग्रहण करने में सहायता करता है, वरन् साथ ही लय की दीर्घता को भी सहयोग देता है। टेक पदों की आवृति से गीत का रहस्य छन-छन कर श्रोताओं के हृदय में बैठ जाता है। अर्थ की दृष्टि से टेक पदों को दो श्रेणियों में वांटा जा सकता है—एक सार्थक और दूसरे निरर्थक। सार्थक टेक वे हैं जिन का कोई निश्चित अर्थ है, और निरर्थक वे हैं जिन का कोई अर्थ नहीं होता उनका महत्व लयात्मक है, वे राग के प्रभाव को अधिक शक्तिशाली वनाते हैं। ए, ओ, रे, वो, हांड़े आदि इसी श्रेणी के पद हैं। एक ही गीत में एक ही साथ सार्थक और निरर्थक दोनों टेकों का साथ-साथ प्रयोग हो सकता है।

गंगी गीत के दो प्रसिद्ध सार्थक टेक पद 'छोहरूआ' और 'छोहरीए' है। जव गीत पुरुष या लड़का गा रहा होता है तो वह टेक के रूप में 'छोहरीए' शब्द का प्रयोग करता है, जो वास्तव में सम्वोधन का परिचायक है अर्थात् हे छोहरीए (अरी लड़की)। जव गीत स्त्री या लड़की गा रही हो तो वह 'छोहरूआ' टेक-पद प्रयुक्त करती है जो लड़के के लिए सम्वोधन है, यथा :—

पार धारा ते उड़ी चिड़िया।
दूर नी जाणा छोहरूआ,
आसां बसी जाणा धारा रिढ़िया।

यहां यदि गाने वाला लड़का हो तो 'छोहरूआ' की जगह 'छोहरीए' पद का प्रयोग होगा। निरर्थक पद के रूप में गंगी गीत में ओ ..ओ और 'हाय' का प्रयोग होता है जो पद के पहले वोला जाता है।

झूरी गीत में सार्थक टेक 'झूरी' (प्रेयसी) है और निरर्थक में 'रे—ओ' और 'वोलो' शब्द का प्रयोग होता है। यूं 'वोलो' का अर्थ 'कहो' है परन्तु टेक के रूप में यह अर्थ न देकर केवल गीत के कलेवर को रोमांचक वनाता है। ऊपरी महासू के लामणादि गीतों में 'नाणी', 'रीलू', 'दशी', 'मोलकू', 'झूरी', 'संगीया' आदि शब्द टेक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनमें से अधिकतः नाम हैं जिनका उल्लेख टेक के रूप में होता है। संगीया का अर्थ हे साथी है। कुल्लू के भौंरू और वाह्मणू लामण गीतों में सर्वाधिक प्रचलित टेक 'मेरे लोभीया' 'मेरी झूरीए' है। स्त्री गा रही हो तो 'मेरे लोभीया' (अर्थात् मेरे प्रियतम) टेक का प्रयोग होता है, और पुरुष गा रहा हो तो 'मेरी झूरीए' (अर्थात् मेरी प्रेयसी)

टेक पद का प्रयोग किया जाता है। ये टेक-पद पंक्ति के बीच में जोड़े जाते हैं। आरम्भ और अन्त में 'ओ—ओ' निरर्थक टेक रहता है :—

उथड़ी धारा—न 'मेरी झूरीए', जोड़ा बराघणु जोधे।
हौछी भौरूई पाणीए ओ, छाती सा भौरी क्रोधे॥

यदि इसी लामण को लड़की गाए तो वह 'मेरी झूरीऐ' के स्थान पर 'मेरे लोभीया' का प्रयोग करेगी।

गिद्धा गीतों में टेक-पद न होकर टेक पंक्ति होती है। यहां गीत के अन्त में गीत की प्रथम पंक्ति को दोहराया जाता है जो टेक का काम देती है।

यहां यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि टेक पद या टेक पंक्ति की **पुनरावृति** के साथ भूल नहीं की जानी चाहिए। टेक-पद और टेक पंक्ति काव्य सरसता के साधन हैं परन्तु मूल गीत के कुछ पद या पद्यांश की पुनरावृति गीत का ही अंग है। यदि इस पुनरावृति को तोड़ दिया जाए तो मूल गीत की मूल शैली ही समाप्त हो जाएगी। न उसके स्थान पर दूसरी कोई अन्य पंक्ति प्रयोग में लाई जा सकती है। उदाहरणार्थ गंगी गीत में पहले पद को दो बार गाया जाता है। यह इस गाने की शैली है टेक नहीं। पुनरावृति के समय सांस टूटने से पहले ही दूसरा पद आरम्भ होता है। यदि ऐसा न हुआ तो गीत कुछ का कुछ हो जाएगा। मूलरूप से विभिन्न चरणों पर पुनरावृति का आगम ही झूरी, लामण, दौशी, गंगी, रीलू को एक दूसरे से अलग करता है। इस पुनरावृति के नियम की अनभिज्ञता के कारण ही आज ये गीत प्रायः एक दूसरे से भिन्न नहीं हो रहे हैं। इन गीतों की पृथकता के मान-दण्ड लय और पुनरावृति हैं जिन के भिन्न गीतों में विभिन्न रूप हैं। लय और पुनरावृति के आधार पर ही गीत के शब्द सुने बिना कहा जा सकता है कि यह अमुक गीत गाया जा रहा है। ये बिना संगीत-यन्त्रों के गीत के संगीत तत्व को समृद्ध करती हैं।

पृष्ठ-भूमि में

सांस्कारिक, धार्मिक, ऋतुपरक लोक-गीतों से हट कर जब हम प्रणय-गीतों का अनुशीलन करने लगते हैं तो सामाजिक तथा वैयक्तिक नैतिकता का उत्तरदायित्व सामने आता है। प्रायः यह कहा जाता है कि ऐसे गीतों का न संकलन होना चाहिए न प्रकाशन। कारण यह कि उन में नग्न-प्यार का उल्लेख होता है, और बहुधा मांसल प्रेम की परिस्थितियों की इतिवृति का बड़े स्पष्ट शब्दों में वर्णन हुआ होता है, जो नैतिक दृष्टि से वांछनीय नहीं है। ऐसे गीतों में अश्लीलता के अंश भी पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। यही कारण है कि अनेक

लोक साहित्य की पुस्तकों में संस्कार, धार्मिक, ऋतु, श्रम और जाति-विशेष के लोक-गीतों का तो बड़ा विस्तृत और शोधपूर्ण उल्लेख होता है, परन्तु प्रणय-गीतों पर आ कर लेखनी तुरन्त रुक जाती है। बहुत सी पुस्तकों में प्रणय-गीतों को स्थान ही नहीं मिला है, और जिन में इन का उल्लेख मिलता है वह अत्यन्त अपर्याप्त और अधूरा होता है। परिणामस्वरूप ऐसे लोक-गीत संग्रह अपने आप में अपूर्ण रहते हैं। यदि सच पूछा जाए तो समाज में सांस्कारिक और धार्मिक गीतों से भी अधिक लोक-प्रिय गीत प्रणय गीत होते हैं, और चूंकि अधिकतर प्रणय गीत सामयिक और घटना प्रधान होते हैं इसलिए उन का महत्व भी कई बार स्थायी नहीं होता और वे बनते और मिटते जाते हैं। अतः ऐसे गीतों को लोक-गीतों के संग्रह में स्थान न देना लोक साहित्य के अध्ययन के साथ अन्याय करना है।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब प्रेम-प्रधान गीत समाज में गाए जाते हैं और शौक से सुने जाते हैं चाहे वृद्ध लोग नाक-भौं चढ़ाते रहें तो उन्हें लोक-गीतों के संग्रहण और प्रकाशन में स्थान क्यों नहीं दिया जा सकता। वास्तव में हर लोक गीत का अपना महत्व है। जहां वे भावात्मक और मनोवैज्ञानिक विचार-धारा का चित्रण प्रस्तुत करते हैं, वहां समाज का सही रूप देखने में उन का अध्ययन अत्यन्त लाभदायक है। लामण–झूरी गीत प्रणय गीत हैं। इन में अश्लील अंश भी हैं, परन्तु ये ऐसी अनूठी काव्यात्मक शैली लिए हुए हैं कि उन का अध्ययन समाजशास्त्री और भाषा-वैज्ञानिक के लिए विशेष महत्व का है। यदि सब से प्राचीन लोक-गीतों का उदाहरण लेना हो तो हमें इन गीतों की शरण लेनी होगी। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से लामण भूले जा चूके हैं, उन के स्थान पर हर समय नए लामणों का जन्म होता जा रहा है, फिर भी यदि भाषा का प्राचीन रूप ढूंढना हो तो इन्हीं गीतों के प्राचीन अवशेषों को देखना होगा। अतः इनका अध्ययन मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री और भाषाविज्ञानी को समान महत्व का है।

यह देखने की बात है कि धार्मिक और सांस्कारिक गीतों को छोड़ कर, जिन के पीछे धर्म और संस्कार की स्वीकृति का बल है, शेष कितने ही गीत समाज में बनते और मिटते गए हैं। परन्तु लामण गीतों के पीछे ऐसी स्वीकृति न होते हुए भी वे केवल अपने बल पर खड़े हैं। वह कौन सी शक्ति है जिसने उन्हें स्थायी स्थान प्रदान किया है? उत्तर है इन की शैली और इन का जीवन से सीधा सम्बन्ध। अतः इन गीतों को चाहे हम किसी दृष्टि से देखें इन की सत्ता कभी नष्ट नहीं हो सकती। इन का साहित्यिक महत्व किसी भी लोक गीत से कम नहीं है। प्रेम मानव जीवन की शाश्वत इकाई है, और जो गीत उस पर आधारित हो उसे किसी और स्वीकृति की आवश्यकता नहीं।

लामण की विशिष्टता

गंगी, गिद्धा, झूरी के अतिरिक्त दशी, साके, दोहे, भौंरू, झंझोटी, झुल्फिया, झांगो, घुधतू, हाजरी, चाहुटे आदि अनेक प्रणय गीत हिमाचल के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। परन्तु ये धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं और इनके गाने वालों की संख्या घटती जा रही है। यहां तक कि कुछ गीतों के बीच लय और शैली का भेद इतना मिट चुका है कि प्रायः गीत-विशेष का नाम बाकी रह गया है और गायक एक गीत को दूसरे गीत के साथ अन्तः मिश्रित कर देते हैं। इन सभी गीतों को प्रायः 'लामण' के नाम से ही अधिक जाना जाता है। परन्तु वस्तुतः लामण गीत अन्य गीतों से कुछ दिशाओं में बिल्कुल भिन्न हैं। लामण गीतों में मुख्यतः तीन गुण हैं, जो लामण को अन्य गीतों से भिन्न करते हैं :—

(१) नृत्य और संगीत का अभाव,
(२) एकान्त और खुला वातावरण, तथा
(३) एकल-गेयता।

पहाड़ी लोक-गीतों में प्रायः नृत्य और संगीत का संयोग होता है। ढोल, नगारे, करनाल, नरसिंगे, तुरी का संगीत प्रायः हर गीत के साथ सुना जाता है और साथ नाच होता है। यही नहीं बहुत सी नाटियों का नामकरण केवल गीत के आधार पर ही होता है। नृत्य वही एक होता है केवल गीत की गति के साथ उसमें तीव्रता या शिथिलता आती है और वही उस नाटी का नाम होता है। परन्तु लामण में न तो संगीत हो सकता है और न ही नृत्य का समावेश। मेलों के अवसर पर प्रायः देखने में आता है कि ज्यों ही किसी नाटी को बदलने की जरूरत हुई तो तुरन्त बाजा–गाजा बन्द हो गया, नृत्य के थिरकते कदम जाम हो गए और नर्तकों में से किसी ने लम्बी लय ली और जादू-भरी उस खामोशी में लामण गा दिया—

देउआ राजेआ, सेवा साहिबो तेरे।
लामण आए मेरे शांगे, कोरे बाजले मेरे।।

(हे देवता राजा! तेरी सेवा करता हूं। मेरे कण्ठ में लामण आ गया है, मेरी आवाज को तेज कर)। यही लामण का चमत्कार है कि नाच, गाना, बाजा बन्द करके अपना प्रभुत्व जमाता है। वही नर्तक गायक लामण समाप्त होते ही दूसरी पंक्ति से अगला गाना, और स्वतः नाटी, आरम्भ करता है—यथा, 'लामण आए मेरे शांगे बो टीकीए, कोरे बाजले मेरे ओ टीकीए...' और इस तरह 'टीकी' का गाना आरम्भ हुआ और नाच भी।

यह केवल भरे नाच में गाने और नाटी के बदलने की बात थी, कि तब

भी सब कुछ शान्त होकर लामण गूंजता है। मूलतः यह एकान्त और खुले वातावरण का गीत है। ऊंची पर्वत शिखाओं पर भेड़-बकरियां चराते हुए, वनों में घास और लकड़ी काटते हुए, लम्बा सफर करते हुए ऊंचे स्वर में गाया जा रहा गीत लामण ही है। ऊंचे टीले पर बैठी युवती कान में उंगली डाल कर जब पूरे स्वर में लामण गाती है तो सारा वातावरण गूंज उठता है, और नीचे वादी में हलचल मच जाती है, श्रोताओं के कान खड़े हो जाते हैं—

भेड़ा चारी पुहालूए, जोता री बागरे पूणू।
उथड़ी धारा-न लाणे दोहे-लामण, बेढ़े लोड़ी लोभीए शूणू ॥

(भेड़ें चराते हुए पुहाल-गड़रिए को पर्वत-शिखा की तेज वायु ने त्रस्त कर दिया है। ऊंची धार से गाऊं दोहे लामण ताकि महल (अबादी) में प्रियतम सुन ले)। वास्तव में शान्त और एकान्त स्थान ही लामण को प्रिय माहौल है। घरों के अन्दर, गांवों की गलियों में लामण का ऊंचा स्वर शोभा नहीं देता। इसे भाता है वह स्थान जो मीलों दूर से नजर आए, ताकि प्रेम की पुकार सोए हुए हृदय को जगा दे।

जिस प्रकार लामण में नृत्य और संगीत का अभाव होता है, उसी प्रकार इसमें सामूहिक-गान की शैली नहीं है। यह वैयक्तिक-गीत है। नृत्य गीतों में सम्मिलित सभी लोगों की सामूहिक भावना और संयुक्त ध्वनि रहती है, परन्तु लामण केवल एक व्यक्ति गाता है, यदि कभी दूसरे ने साथ दे भी दिया तो ढलती हुई लय को सहायता देता है अन्यथा मूल लामण केवल एक व्यक्ति अपनी ही धुन में गाता है। लामण भावना-प्रधान गीत है, जब एकान्त में काम करता या चलता राही थक जाता है तो प्रेमिका की याद आ घेरती है और भावुक हृदय लामण की पंक्ति गा कर मन के भार को हल्का कर देता है; और चूंकि लामण में संगीत और सहयोगी गायक की आवश्यकता नहीं, वातावरण की निस्तब्धता लामण की ऊंची और लम्बी लय द्वारा भंग हो जाती है। इस प्रकार नृत्य और संगीत का अभाव, खुले और निस्तब्ध स्थान का वातावरण और एकल-गेयता का गुण लामण गीत को अन्य लोक-गीतों से पृथकता प्रदान करते हैं।

लामण को **दोहा** भी कहा जाता है। हिन्दी साहित्य के दोहा-छन्द के साथ लामण-गीत कितना साम्य रखते हैं, यह हम आगे देखेंगे। यहां इतना जान लेना अपेक्षित है कि स्थानीय बोली में दोहा और लामण समानार्थक शब्द हैं, एक दूसरे का स्थान लेते हैं और बहुत से लामणों में दोनों शब्द साथ-साथ प्रयुक्त होते हैं जैसा कि पूर्वकथित लामण में देखा गया है। कुल्लू में देवताओं

के विशेष मेलों के अवसरों पर जब लामण की लय को कुछ बदल कर गाया जाता है तो उसे 'हाज़री-चाहुटे' कहा जाता है **'हाज़री'** शब्द संस्कृत 'हर्षरि' से सम्बन्धित है और चाहुटा संस्कृत 'चतुष्पदः' का तद्भव रूप है। जब एक देवता रूठ कर अपने सम्बन्धी किसी दूसरे देवता के पास जाता है, तो उसके मनाने के लिए गए उपासक ऊंची धाराओं के रास्ते से आते हुए हाज़री-चाहुटे लगाते हैं। मूल लामण में एक-एक पद को इतना लम्बा खींचा जाता है जितना गायक का सांस हो, और हर शब्द पर इतना ज़ोर डाला जाता है कि वह स्पष्टतः सुनाई दे। इस सीमा तक हाज़री-चाहुटे भी ठीक उतरते हैं। परन्तु इन में एक भिन्नता है कि इन्हें सामूहिक रूप में भी गाया जाता है।

हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में लामण को भौंरू भी कहते हैं। **भौंरू** शब्द 'भ्रमर' का तद्भव रूप है। भ्रमर-गीत भारतीय काव्य की एक विशिष्ट विधा के रूप में प्रचलित रहे हैं। विशेषतः हिन्दी का भक्ति साहित्य भ्रमर-गीतों के लिए मुख्यतः प्रसिद्ध है। मूल रूप में भ्रमर-गीत की मुख्य विशेषता यह रही है कि गोपियों ने कृष्ण द्वारा उन्हें सांत्वना देने के लिए भेजे उद्धव के समुख भौंरे को सम्बोधित करते हुए ऐसे उपालंभ दिए हैं, जो वस्तुतः अप्रत्यक्ष रूप में कृष्ण को दिए गए थे। इस प्रकार उपालंभ, व्यंग्य और परिहास भ्रमर-गीतों के मुख्य अंग रहे हैं, तथा इस दृष्टि से लामणों को भौंरू कहना बड़ा युक्तिसंगत है, क्योंकि बहुत से लामण व्यंग्य, उपालंभ और परिहास प्रधान हैं। एक उदाहरण देखिए :—

चोटी बोलो कोयड़ीए रोई लूम्बीए लूम्बी।
साजणे घाली बिसरी जेशी हाटीए डेरे दी तूम्बी ॥

यहां किसी प्रियतम द्वारा भुलाई प्रेयसी पर कितना तीव्र कटाक्ष है कि तुझे तो ऐसा भुला दिया गया है जैसे हाट-बाज़ार को छाछ ले जाता हुआ व्यक्ति तूम्बी को भूल जाता है और फिर याद आने पर भी उसे तुच्छ समझ कर ले नहीं जाता। सूरदास की गोपियों को यह शिकायत थी कि जब से श्याम गोकुल छोड़ के गए उन्हें हमारी याद ही भूल गई। ऐसी ही मर्मस्पर्शी अभिव्यंजना लामणों में प्रायः देखने में आती है :—

धारा चौरली भेड़ा बौकरी, नाला-न चौरली मेंही।
कैंडी शोटीए पूणी फ़ड़ाकिया, धाना-रे कोशरे सेंही ॥

(धारों पर चरेंगी भेड़ें और बकरियां, नाले में चरेंगी भैंसें। कैसे फैंक दी निष्पवन और बीजन करके धान के छिलके की तरह) कैसी विवशता है प्रेमिका की। उसे ऐसे ही भूल कर छोड़ दिया है जैसे धान से चावल तो सम्भाल कर

ले आए तो छिलकों को तुच्छ समझ कर फैंक दिया। भ्रमर काव्य के आरम्भिक चरणों में प्रायः भ्रमर का भी उल्लेख होता था, बाद के गीतों में उसका लोप हो गया। भौंरू (लामण) गीतों में भी कई बार भौंरे का नाम आता है :—

कागू-नी छाड़नू, कागू देंदा चुगली पाई।
पाटू छाडू भौंरा, बेशी देओ कुशाड़ी लाई।।

'(अपना सन्देश मैं) कौवे के पास नहीं भेजूंगी। कौवा देता है चुगली डाल। पाती दूंगी भौंरे के पास, (वह) बैठ कर कुशलता पढ़ कर सुना देगा'। स्पष्ट है कि 'भौंरू' का सम्बन्ध सीधा भ्रमर-गीत से है और लामणों का विषय इसके अनुकूल है। कुलुई क्षेत्र में आज कल लामण का स्थान 'वाह्मणू' ने लिया है। लामण की लयात्मक ध्वनि लुप्त-प्राय हो गई है, केवल वृद्ध स्त्रियों तक ही यह सीमित रह गई है। परन्तु वाह्मणू आज भी अत्यन्त लोक-प्रिय गीत है। 'वाह्मणू' शब्द संस्कृत 'ब्रह्मन' ब्राह्मण से व्युत्पन्न हुआ है। संस्कृत साहित्य में 'ब्रह्मन' स्तुतिपरक सूक्त हैं। वाह्मणू में भी ऐसी भावना की कमी नहीं है। वाह्मणू और भौंरू पर्यायवाची शब्द हैं। दोहे-लामण की एक बानगी की विजाय वाह्मणू या भौंरू को प्रायः पुनरुक्ति द्वारा टेक दे-दे कर इस प्रकार गाया जाता है :—

सोंझ पोई सोंझड़ी, ग्रौग भौकली गेठे।
तौं निहालदे भालदे, हौछी रे डेलरू बेठे।।

(संध्या का समय हो गया संध्या का, आग जलेगी अंगीठी में। तुझे देखते भालते, नेत्रगोलक भी धस गए हैं) इस मूल लामण को वाह्मणू या भौंरू में इस तरह विभिन्न सांसों में गाया जाएगा—

सोंझ पोई सोंझड़ी ग्रो मेरी झूरीए ऽ ऽ ऽ
ग्रौग भौकली गेठे ऽ ऽ औग भौकली गेठे।
तौं निहालदे भालदे ऽ ऽ मेरी झूरीए ऽ ऽ ऽ
हौछी रे नेंदिए डोलरू ए ऽ ऽ
सेरी झूलदीए बौता-न भूलदीए (असम्बन्धित)
ओ······ओ······ ओ·········ऽ ऽ बेठे।।

स्पष्ट है कि लामण में न केवल कण्ठ माधुर्य का अनुयोग है, वरन् स्वर दीर्घता की भी परीक्षा है। उपर्युक्त हर पंक्ति एक श्वास में गाई जाती है। प्रत्येक शब्द पर पूरा जोर रहता है, तथा जब तक सांस टूटता नहीं पंक्ति को समाप्त नहीं किया जाता। लामण के अन्तिम शब्द को पूरे एक श्वास के लिए सुरक्षित रखा जाता है, और इसे गाने से पहले एक शृंगार भरा तुक अलग से गाया जाता है जिस का मूल वाह्मणू से कोई सम्बन्ध नहीं होता जैसा कि

उपर्युक्त भौंरू में 'सेरी झूलदीए वौता-न भूलदीए' उक्ति है (फसल के खेतों में झूमती हुई युवती ! क्या रास्ता भूल गई है !) यह गाने वाले की अपनी योग्यता है कि वह मौके पर ही श्रृंगार भरी क्या उक्ति उस समय वोलता है। यह उक्ति अपने आप में गीत है जो मूल लामण को अमूल्य सौंदर्य प्रदान करता है।

काव्यात्मक सजीवता

पहाड़ी ग्रामीण समाज में दोहे-लामण, झूरी लोक-गीतों का विशेष महत्व है। केवल इसी लिए नहीं कि वे मनोरंजन के मधुर साधन हैं, वल्कि इस लिए भी कि इनका ज्ञान समाज में योग्यता का प्रदर्शन कराता है। लामणों के कितने ही पद आज लोकोक्तियां वन चुकी हैं। पहाड़ी लोक-साहित्य में प्रचलित प्रकीर्ण साहित्य का अधिकांश भाग दोहे-लामणों के पद्यांश हैं। यदि किसी को शिक्षा-दीक्षा देनी हो तो उन्हें प्रस्तुत किया जाता है। किसी को ताड़ना या डांट-डपट करनी हो तो भी तुरन्त लामण पद्यांश सामनें आता है। लोक-गाथाओं और लोक-कथाओं में वीच-वीच में पूरे लामण मूल पाठ की शोभा बढ़ाते हैं। लामणों की रचना के लिए कवि-हृदय होना ज़रूरी है। यही कारण है कि बहुत से लामण लोक-गीत की धरा से उतर कर साहित्यिक तथा कवि-रचित लगते हैं। इन में साधारण लोक गीतों की भावुक अभिव्यंजना प्रधान नहीं लगती, वरन् मस्तिष्क का प्रयास स्पष्ट प्रतीत होता है। वहुत से लामणों में काव्य की सी गुरुता और गंभीरता वनी रहती है। लामणों की यही काव्यमयी अभिव्यंजना इन्हें अन्य लोक-गीतों से भिन्नता प्रदान करती है। परन्तु इन लामण गीतों में न तो शिष्ट साहित्य के कवियों की तरह कल्पना की असह्य उड़ान होती है और न समाज से कटी हुई। लामणों में लोक मानस सर्वदा प्रधान रहता है। कवि-हृदय में वास्तव में लोक-हृदय वोलता है। इस से यह नहीं समझना चाहिए कि लामण कवि की मस्तिष्क की खपत है, वल्कि वास्तविकता यह है कि लामणों में काव्यमयी अभिव्यंजना मुख्य विशेषता है और वह सतत् चेष्टा द्वारा रचित न हो कर स्वतः प्रसूत होती है। लामण अधिकत: अनुभूति प्रधान हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव सदैव उनके मूल में निहित रहता है। यही वात मूल लामण-गीतों को झूरी, गिद्धा, गंगी, भौंरू आदि अन्य प्रणय गीतों से भिन्न करती है, यद्यपि आज ये सभी गीत इतने घुल-मिल चुके हैं कि एक को दूसरे से स्पष्ट करना कठिन है। आज साके, दशी, हार, रासों, झांगों, झंझोटी, गिद्धा, टप्पों को भी लामणों में गिनना शुरु किया गया है। यही कारण है कि मूल

लामण विषय की दृष्टि से भी तथा शैली की दृष्टि से भी भूला जा रहा है। मूल रूप में लामण जीवन की अनुभूतियों का सच्चा चित्रण है, तथा अनुभूत-ज्ञान काव्य शैली में अभिव्यक्त लामण के रूप में लोक-साहित्य का अनूठा कोष है। इसी लिए लामण के जानने वाले का समाज में मान होता है, जितने अधिक लामण किसी गायक को आते हैं, उतना ही अधिक वह अन्य गायकों पर छाया रहता है। चूंकि जीवन का साक्षात दर्शन लामणों में रहता है इस लिए इन्हें अन्य लोक-गीतों से ऊंचा दर्जा दिया जाता है। निम्नलिखित लोक गीत की पंक्तियां वस्तुतः लामण-गीत के महत्त्व को ही दर्शाती हैं :—

गीता न लामणू,
दोहे न बाह्मणू,
छेई आणे छेई आणे तेरे इन्हा।
दोती दोती रे राधेशामा सीतारामा।
एई कौरी तेरे पारी पांडे भाई छेऊ।
एबे रौहौ तें हाऊं छैणा। †

ग्रामीण जीवन की कठोर और यथार्थ भूमि में वही बात प्रभाव डाल सकती है जो उन के अपने परिवेश में अनुभवानुसार ठीक उतरती हो। अन्यथा उनके लिए प्रातःकाल (दोती-दोती) का राधेश्याम, सीताराम जपना क्षय-नाश (छेई-छैणा) को निमंत्रण देना है, इसी ने बड़े भाई (पारी पांडे) को नष्ट किया और अब रहा मुझे (हाऊं) नष्ट करना। पूजा-पाठ, आदर-सत्कार, मान-मर्यादा उसी सीमा तक वांछित है जिस सीमा तक वह सामाजिक अदान-प्रदान के लिए जरूरी है। अन्यथा यथार्थ सत्य को लोक-मानस भूल नहीं सकता और ऐसे उदाहरणों की उसके मन पर गहरी पैंठ रहती है—

जींदे जीउए केरी झूरना, मौरिया फूले री हारा।
शुका नी पलासिदा हेरू, मुआं नी फिरदा घौरा।

'जीते जी प्रेम करना, मरने पर फूलों का हार (पहन लेना, क्योंकि यह सर्वविदित है कि) सूखी (डाली) पर कौंपल नहीं लगती और मरा (मुर्दा) वापिस घर नहीं आता।' शिष्ट साहित्य के कवि की बौद्धिकता तथा काल्पनिकता का कोई काम नहीं, सीधा भावयुक्त विचार सामने प्रत्यक्ष है। जिस उक्ति का जीवन की सच्चाई से सीधा सम्बन्ध है उसका न केवल मन पर प्रत्यक्ष प्रभाव है, वरन् स्मृति-पटल पर उसकी झांकी भी चिरस्थायी रहती है। लामण गीतों की इस काव्यमयी अभिव्यक्ति में भावों की गम्भीरता, विचारों की प्रौढ़ता और अनुभवों

† डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप : कुल्लुई लोक साहित्य, पृष्ठ 202।

64278

की विशालता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। श्रृंगार प्रधान लामण-गीतों का प्यार भी चाहे ऊपर से हल्का, तुच्छ, विलासयुक्त मांसल और छिछला दीख पड़े, परन्तु यदि गहराई में देखा जाए तो उनकी यथार्थता में आदर्श भावना की संयति लक्षित होती है। जब लोक-गायक नौजवानी में मौज लुटाने की बात करता है तो वासना के पीछे कुछ और भी है—

गेहूं पौके घुमकू, नांखड़ी जौआ री सेरी।
मौज केरी चौ ध्याड़ी, जुआनी नी एजणा फेरी।

यह तो सांसारिक परम्परा है, प्राकृतिक नियम है। जन्म, यौवन और मरण एक क्रमिक और शाश्वत नियम है; 'गेहूं यदि भरपूर पके हैं तो साथ ही जौ कट कर खेत वीरान पड़ा है। मन-मौज पूरी कर लो चार दिनों में, जवानी फिर नहीं आएगी।' यह तो क्षणभंगुर और नश्वर वस्तु है। सफल वही है जिसने संयम से इसे भुगता है। प्रेम में शीघ्र-प्राप्ति और फिर स्थिरता की कामना ही प्रेम के मृदु और सुकुमार तन्तु के आभास की चेतावनी देती है। इस नाज़ुक तन्तु को मर्यादा और नैतिकता की कड़ी ही बल दे सकती है। इस प्रकार वर्तमान दोहे, लामण, झूरी, साका गीतों में श्रृंगार की प्रधानता होते हुए भी उनमें जीवन, धर्म, लोकाचार, नीति, शिक्षा के विवेकपूर्ण काव्यात्मक भावों का समन्वय रहता है।

आलंकारिक सौन्दर्य

सादगी और स्वाभाविकता लोक-गीतों का सबसे बड़ा आभूषण है। बनावट और सजावट के लिए लोक-गीतों में कोई स्थान नहीं होता। लोक-गीतों के इस सजातीय गुण से लामण-गीत अपवाद नहीं हो सकते। इनके सीधे-सादे शब्दों में मधुरता कूट-कूट कर भरी होती है। इनमें भावों की प्रधानता और विचारों की गहराई होती है। शब्दों का जाल और सजावट का आडम्बर, जो शिष्ट-साहित्यिक कविता के गहने हैं, इनमें घुस-पैठ नहीं कर सकते। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि इन गीतों में सौंदर्य और कलात्मकता नहीं है। वरन् सत्य यह है कि काव्यात्मक आलंकारिता इनमें अवश्य है, परन्तु यह सौन्दर्य प्राकृतिक है, ऊपर से लादा या ठूंसा हुआ नहीं। अलंकार, वास्तव में, काव्य के आभूषण हैं चाहे वह शिष्ट-काव्य है या लोक-काव्य। अन्तर केवल इतना है कि लोक गीतों में ये अलंकार अनायास ही स्वतः आ गए हैं, प्रयत्न पूर्वक चेष्ठा के ये परिणाम नहीं हैं।

लामण-गीतों की स्थिति में यह बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि इन में अलंकारों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध है, यद्यपि यह सत्य है कि इन

का आगमन काव्य के नियमों से दूर और व्याकरण के बन्धनों से मुक्त है। यह पहले निर्दिष्ट किया गया है कि तुकान्त शैली, टेक-पदों के प्रयोग और भाव-विचारों की गहनता के कारण लामण-गीत काव्यात्मक रूप धारण किए हुए हैं, और मौलिक तथा स्वाभाविक अलंकारों का संयोग इस रूप को और विशिष्ट वना देता है।

मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्य-प्रिय है। वचपन से ही वह सुन्दर वस्तु की ओर आकर्षित होता है, हर सुन्दर वस्तु की प्रशंसा करता है। स्वयं सुन्दर होना चाहता है और वातावरण को सुन्दर वनाना चाहता है। जव वह किसी वस्तु की सुन्दरता की व्याख्या करता है वही अलंकार है। ऐसी व्याख्या वह कई ढंगों से करता है। लामण-गीत मूल रूप में प्रणय गीत होने के कारण विभिन्न अलंकारों से भरपूर हैं। परन्तु ये अलंकार पारम्परिक और शास्त्रीय अलंकारों से भिन्न हैं और अनायास आने के कारण ये वोझिल नहीं लगते।

लामण-गीतों के अलंकारों में **उपमा** का विशेष स्थान है—'झूरी री ह्राखटीए जिशी चानणी री लोईए .....' लामण में प्रेमिका के नेत्रों को चन्द्रमा के प्रकाश से उपमा दी गई है। इसी तरह एक दूसरे दोहे में 'चूड़ी रा कोथरा तेरे लोजड़े कानो .. ..' प्रेमिका के कानों की चूड़ पर्वत-शिखा की कस्तूरी-मृगी से समानता जोड़ी गई है। इन सामान्य उपमाओं को छोड़ कर लामण-गीतों में उन उपमालंकारों का विशेष महत्व है जो अत्यन्त मौलिक और स्वाभाविक हैं। इनके उपमान अपने वातावरण से उभरे होते हैं। ये देहात की दुनियां से सम्वन्ध रखते हैं और ग्रामीण परिवेश के सौन्दर्य से प्रसूत होते हैं :—

दिहाड़ा नौठा उड़िया, नौठा तराम्बली पीछे।
भाण्डे फूटिया ठीकर माण्हू नी मौरिया कीछे।

यहां पर मृत-शरीर की उपमा मिट्टी के टूटे वर्तन की ठीकरी से दी गई है। नश्वर शरीर को टूटे वर्तन की ठीकरी कहना कितना स्वाभाविक है। विरह की आग से वियोगी और वियोगिन जलते रहते हैं, शिष्ट साहित्य इस वात का साक्षी है। इसका संवाद पक्षी भी ले जाते रहे हैं। परन्तु विरह की आग कैसे जलाती है, इसका वखान लोक-कवि ही कर सकता है :—

हौथड़ू तेरे फूले रे डोलरू, मुँहड़ू दूधा री देंही।
हिकड़ू जौलू मेरी झूरीए, चीले रे सेलरे सेंही।

हृदय ऐसा जला है जैसे चील वृक्ष का बिरोज़ा। बिरोज़ को आग लगने की देर है, फिर तो वुझता ही नहीं चाहे कितना प्रयत्न करे। अमूर्त प्रेम की आग को मूर्त चील के बिरोजे की आग से उपमा देना लोक कवि की विशेषता है। मूर्त

की अमूर्त से और अमूर्त की मूर्त से सदृश्यता दिखाना लामण-गीतों की उपमाओं का मुख्य महत्त्व है। उक्त लामण में दूसरे उपमालंकार भी देखने योग्य हैं। उपमा के लिए ग्रामीण गायक को काल्पनिक उपमान नहीं ढूंढने पड़ते। उसके उपमान अत्यन्त सरल तथा अपने पड़ोस की सामान्य वस्तुएं होती हैं। हाथ को यहां फूल के 'डोलरू' से साम्यता दी है। स्थानीय बोली में डोलरू खिला फूल है। हाथ-उपमेय डोलरू-उपमान की तरह हलका कोमल ही नहीं बल्कि खिले फूल की तरह सुन्दर भी है। इसी तरह मुंह को दही की उपमा देना यह स्पष्ट करता है कि लोक-गायक असम्भव कल्पना का सहारा न ले कर लोक-जीवन का आंचल पकड़ता है। इसी तरह एक लामण में साजन के हाथ को गुलाब के फूल से उपमा दी गई है :—

साजने हाथड़ू जेणे गलाबा रे फूला।
राची मिला सुपने, धैड़ी मेरी आखीए भूला।

अपनी ही चिर-परिचित वस्तुओं से उपमान के चुनाव की प्रवृति एक अन्य लामण से स्पष्ट हो जाती है। शिष्ट काव्य-जगत में आंखों की उपमा मृग के नयनों से दी जाती है। परन्तु ग्रामीण समाज इतनी दूर नहीं जाता। वह सुन्दरी के नेत्रों की उपमा रीठे की गुठली से करता है :—

झूरी री हाखटी जिशी खुग्रारे री गूटी।
निमती कौर नजरा, सारी तें दुनियां लूटी।

इन रीठे की गुठली के समान काली और गोल आंखों ने सारी दुनियां लूट ली है। मृग के नयन किस ने देखे हैं। दिन-प्रति-दिन की देखी भाली वस्तु रीठे की गुठली से वढ़ कर और क्या उपमान हो सकता है। यही सादगी लामण-गीतों के अलंकारों की शोभा है। और, जब अमूर्त उपमेय की मूर्त उपमान से साम्यता दिखाई जाती है तो लामण उपमालंकारों का चमत्कार द्विगुणित हो कर निखरता है :—

शीली बोलो घासणीए, तांदी फूको श्रागो।
बिना भावरा भावटा, जिशा अलणे कोदू रा शागो।

जैसे हरे घास के सपाट वन (घासणी) को आग से जलाना असम्भव है, वैसे ही विना प्रेम के मिलन दुष्कर है। विना मिलन का प्रेम ऐसा ही अप्रिय है जैसे विना नमक के कद्दू की सब्जी, जिसमें कोई स्वाद नहीं होता।

उपमा की तरह ही **रूपक** अलंकार के भी लामण-गीतों में पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। यह सत्य है कि इनमें लम्बे रूपक नहीं मिलते, जिसका मुख्य कारण यही है कि लोक-गायक कभी भी सप्रयास अलंकार नहीं जोड़ता।

प्रयत्न करके रूपक भरना लोक-कवि का उद्देश्य नहीं होता। ऐसी दिमागी कसरत उसकी कल्पना से बाहर की वस्तु है। गीत उसके जीवन का मुख्य अंग है, इसे वह स्वाभाविक रूप से सुन्दर बनाता है और इस स्वभाव में जो वह रचता है उसमें हम अलंकार ढूंढते हैं। ऐसी स्थिति में लामण-गीतों में हमें सुन्दर रूपक मिलते हैं, जो स्वाभाविकत: छोटे और सरल हैं। एक लामण में नायक अपने को दीप और नायिका को बत्ती का रूप बताता है :—

सापो रे मुँडकी पोरू देए ले काटी।
हाऊं बोणू दीउटू, तू बोणी दीए री बाती।

यदि हम दोनों के प्रेम में समाज रूपी सांप बाधक है तो सांप के सिर को परे फेंक दूंगा काट कर। मैं दीपक हूंगा और तू दीपक की बत्ती और प्रेम के मिलन का प्रकाश हमारे जीवन का मार्ग-दर्शक होगा। एक दूसरे लामण गीत में प्रियतम को जंगल के पक्षी और प्रेयसी को मैदान की घुग्घी का रूप आरोपित किया गया है :—

खाई दपौहरी खाऊ श्रौघला सीड़ू।
झूरी सा बाल्हारी घुगती, लोभी जोता रा चीड़ू।

यहां झूरी (प्रेमिका) उपमेय में घुग्गी-उपमान के प्रेम-याचना का गुण आरोपित किया गया है, और उधर लोभी (प्रेमी) उपमेय में पक्षी-उपमान के सौन्दर्य का आरोपण है। अपने ही वातावरण से चुने रूपकालंकार का एक दूसरा उदाहरण लीजिए। इसमें प्रेमी को चकोर का तथा प्रेमिका को चकोरी का रूप दिया गया है। उनकी विरह की तड़फ की वेदना चकोर और चकोरी की वनों में चहक के समान है :—

फूल फूलू डोलरा, बोणा-न भूँबले पौके।
लोभी चाकरू लौड़फ़ड़ा हुआ झूरी चाकरी कौखे।

इस प्रकार लामण-गीतों में रूपकालंकार के अनेक सुन्दर वर्णन मिलते हैं।

इसी प्रकार **उत्प्रेक्षा** अलंकार के चित्रण भी यत्र-तत्र देखने में आते हैं। एक लामण में विरह के दुख से क्षीण हुए शरीर को ऐसा हड्डी का ढांचा बताया है मानो ऊन के पट्टू को कीड़े ने चाट कर छलनी बना दिया हो :—

मास नी रौहू पिंडा-न हेरिदा, हाड़कू हेरिदे रौहे।
पिंडा रा बोणू चांलू जेंडा पौटू लेमकू लौहे।

'इस शरीर में मांस देखने को भी नहीं है, केवल हड्डियां दीख रही हैं। शरीर छलनी बना है जैसे पट्टू को लौहे (कीड़ा-विशेष जो ऊनी कपड़ों को काटता है) ने चाट लिया हो।' यहां विरह के कारण जो शरीर हड्डी का ढांचा बना है

उसमें ऐसी सम्भावना की गई है मानो कीड़े ने मांस को चाट लिया हो। लौहा (एक कीड़ा विशेष) पट्टू की ऊन-ऊन को चाट जाता है और केवल धागे-धागे शेष रह जाते हैं जो छलनी की तरह लगते हैं।

उत्प्रेक्षा का एक और उदाहरण देखिए। यहां अनमेल विवाहित जोड़े का दृश्य प्रस्तुत है। पत्नी का रंग तो गोरा है और पति का काला। ऐसा जोड़ा देख कर गायक को लगता है जैसे सफैद गेहूं के साथ काले-कोदो अन्न का मेल हुआ हो :—

झूरी होली बाँठणो, रो माणश काला।
ई का मूई कोरी रो, गेहूं में मण्डवा डाला।

उपर्युक्त दोनों लामणों में भी अलंकारों की सादगी और ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित उपमानों की उपयुक्तता देखे बनती है। सादृश्य के लिए लोक मानस ने वही वस्तुएं चुनी हैं जिनसे वह भली-भान्ति परिचित है। परन्तु यदि पाठक उनका आनन्द न ले तो इस लिए कि वे उनसे अपरिचित हैं।

इस प्रकार लामण-गीतों में लोक-कवियों ने उपमेय या प्रस्तुत के रूप, गुण, क्रिया अथवा भाव का साम्य कई प्रकार के उपमानों या अप्रस्तुतों से किया है। परम्परागत उपमानों की अपेक्षा नवीन उपमान न केवल उनके वातावरण की उपज हैं बल्कि उनका चयन लोक-कवि की प्रतिभा के परिचायक है। एक लामण में सांगरूपक का दृश्य देखें :—

गेहूं गौगरे, पीउंले जौऊ री काशी।
चन्द्रा सेहीं नजरी तेरी, सूरजा सेहीं पियाशी।

यहां प्रियतमा अर्थात् उपमेय के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य को विभिन्न उपमानों से दर्शाया गया है। 'उसका शरीर गेहुंएं रंग का है, वस्त्र पक्की जौ की फसल की तरह पीले हैं। आंख चन्द्रमा के समान सुन्दर है और मुख का उजाला सूर्य के प्रकाश की तरह है।' इस तरह सांगोपांग दृश्य प्रस्तुत करना लोक-कवि की प्रतिभा का प्रतीक है। सच पूछो तो लामण-गीत साम्यमूलक अलंकारों से लबालब भरे हैं। लामण के रचयिताओं ने वर्ण्य-उपमेयों के गुणों को बड़े उपयुक्त उपमानों की सहायता से अत्यन्त सुन्दर और सरल रूप से प्रतिबिम्बित किया है—सास और ससुर सिर की पगड़ी हैं तो देवर पानी का लोटा है, भाभी गुलाब का फूल है तो भाई ज़ौरा है (अंधेरे में उगाया जौ का पौधा जो पीला होता है) अथवा यदि एक गुलाब का फूल हो तो दूसरा नरगिस का फूल है, प्रियतम शीशे का चौखट है तो प्रेयसी फोटो है, प्रेमी पानी का चश्मा है तो प्रेमिका ठण्डा पानी है। इस तरह लामण-गीत उपमा और रूपक अलंकारों से पूर्ण हैं। यदि कुछ

उपमान सामान्य हैं तो नवीन उपमानों की भी कमी नहीं। कुछ रूपकों का पाठक मजा न ले सकें, तो इस लिए कि हमें उस वातावरण का ज्ञान नहीं है, जिसकी वे उपज हैं।

अन्य अनेक अलंकारों में अतिशयोक्ति लामण-गीतों का अधिक लोक-प्रिय अलंकार है। किसी वस्तु या परिस्थिति का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करना लोक-मानस का सामान्य गुण है। अतिशयोक्ति से अभिप्राय: उपमेय के रूप, गुण, भाव या क्रिया को स्थिति के अनुसार अत्यधिक विस्तार या संकोच से उल्लेख करना है। लामण-गीत की अपनी अतिशयोक्ति देखे बनती है :—

सेर आणे मंगोहलू, पौथा आणे जुम्राणे।
उथड़ी धारा-न लाए लामण, लोका लोड़ी पोए तुआणे।

यहां लामण-गीत की मधुरता का उल्लेख है। यह मीठा, मधुर और रस युक्त गाना है इस में कोई सन्देह नहीं। परन्तु यहां तो यह बताया गया है कि ऊंची पर्वत-शिखा से लामण-गीत गाया तो नीचे वादी में सुनने वाले मंत्र-मुग्ध हो कर बेसुध गिर पड़े। ऐसा मोहित लामण-गीत ने श्रोताओं को कर दिया कि वे अपने होश खो बैठे। लामण-गीतों में सब से अधिक अतिशयोक्ति शृंगार-रस में हुई है। विरह में गला भर जाता है, खाना मीठा नहीं लगता, नींद नहीं आती, काम में दिल नहीं लगता, समय बीते नहीं बीतता यहां तक तो ठीक है ये सभी बातें विश्वास की परिधि में आ जाती हैं। परन्तु इस वियोग में हड्डियां, मांस बिलकुल गायब हो जाएं तो यह अतिशयता की पराकोटि है :—

खैरो री ताकड़ी, सांदणो री डांसो।
ईशा लागा भावटा, न रौही हाड़की न मांसो।

इसी तरह एक अन्य लामण में छाती जल कर राख हो गई है और हृदय का घूड़ा बन गया है :—

लाड़की झूरी रा जिभड़ू टिणके ढोला रा पूड़ा।
छाती जौलि़या हुई भौसा री ढेरी, कौकड़ी जौलि़या धूड़ा।

यहां एक और अतिशयोक्ति भी देखने योग्य है, जो सूक्ष्म के लिए स्थूल उपमान की अधिकता के कारण हास्यास्पद बन गई है। कहा है 'प्यारी प्रेमिका की जिह्वा ढोल के सख्त चमड़े की तरह है (जिस पर लकड़ी-काठी मारने से तेज़ ध्वनि निकलती है) छाती जल कर भस्म का ढेर हो गया है और हृदय जल कर धूलि बन गई है।' प्रेमिका की जिह्वा सूक्ष्म वस्तु मधुर वस्तु होती है, उस में मिठास है, परन्तु ढोल के पूड़े के साथ इसे जोड़ना उसकी खिल्ली उड़ाना है। इसके विपरीत सूक्ष्म का सूक्ष्म से सम्बन्ध जोड़ने पर अतिशयोक्ति होते हुए भी वह अखरती नहीं है :—

उसमें ऐसी सम्भावना की गई है मानो कीड़े ने मांस को चाट लिया हो। लौहा (एक कीड़ा विशेष) पट्टू की ऊन-ऊन को चाट जाता है और केवल धागे-धागे शेष रह जाते हैं जो छलनी की तरह लगते हैं।

उत्प्रेक्षा का एक और उदाहरण देखिए। यहां अनमेल विवाहित जोड़े का दृश्य प्रस्तुत है। पत्नी का रंग तो गोरा है और पति का काला। ऐसा जोड़ा देख कर गायक को लगता है जैसे सफ़ेद गेहूं के साथ काले-कोदो अन्न का मेल हुआ हो :—

झूरी होली बाँठणो, रो माणश काला।
ई का मूईं कोरी रो, गेहूं में मण्डवा डाला।

उपर्युक्त दोनों लामणों में भी अलंकारों की सादगी और ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित उपमानों की उपयुक्तता देखे बनती है। सादृश्य के लिए लोक मानस ने वही वस्तुएं चुनी हैं जिनसे वह भली-भान्ति परिचित है। परन्तु यदि पाठक उनका आनन्द न ले तो इस लिए कि वे उनसे अपरिचित हैं।

इस प्रकार लामण-गीतों में लोक-कवियों ने उपमेय या प्रस्तुत के रूप, गुण, क्रिया अथवा भाव का साम्य कई प्रकार के उपमानों या अप्रस्तुतों से किया है। परम्परागत उपमानों की अपेक्षा नवीन उपमान न केवल उनके वातावरण की उपज हैं बल्कि उनका चयन लोक-कवि की प्रतिभा के परिचायक है। एक लामण में सांगरूपक का दृश्य देखें :—

गेहूं गौगरे, पीउंले जौऊ री काशी।
चन्द्रा सेहीं नज़री तेरी, सूरज़ा सेहीं पियाशी।

यहां प्रियतमा अर्थात् उपमेय के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य को विभिन्न उपमानों से दर्शाया गया है। 'उसका शरीर गेहुंएं रंग का है, वस्त्र पक्की जौ की फसल की तरह पीले हैं। आंख चन्द्रमा के समान सुन्दर है और मुख का उजाला सूर्य के प्रकाश की तरह है।' इस तरह सांगोपांग दृश्य प्रस्तुत करना लोक-कवि की प्रतिभा का प्रतीक है। सच पूछो तो लामण-गीत साम्यमूलक अलंकारों से लबालब भरे हैं। लामण के रचयिताओं ने वर्ण्य-उपमेयों के गुणों को वड़े उपयुक्त उपमानों की सहायता से अत्यन्त सुन्दर और सरल रूप से प्रतिविम्बित किया है—सास और ससुर सिर की पगड़ी हैं तो देवर पानी का लोटा है, भाभी गुलाब का फूल है तो भाई ज़ौरा है (अंधेरे में उगाया जौ का पौधा जो पीला होता है) अथवा यदि एक गुलाव का फूल हो तो दूसरा नरगिस का फूल है, प्रियतम शीशे का चौखट है तो प्रेयसी फोटो है, प्रेमी पानी का चश्मा है तो प्रेमिका ठण्डा पानी है। इस तरह लामण-गीत उपमा और रूपक अलंकारों से पूर्ण हैं। यदि कुछ

उपमान सामान्य हैं तो नवीन उपमानों की भी कमी नहीं। कुछ रूपकों का पाठक मजा न ले सकें, तो इस लिए कि हमें उस वातावरण का ज्ञान नहीं है, जिसकी वे उपज हैं।

अन्य अनेक अलंकारों में अतिशयोक्ति लामण-गीतों का अधिक लोक-प्रिय अलंकार है। किसी वस्तु या परिस्थिति का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करना लोक-मानस का सामान्य गुण है। अतिशयोक्ति से अभिप्राय: उपमेय के रूप, गुण, भाव या क्रिया को स्थिति के अनुसार अत्यधिक विस्तार या संकोच से उल्लेख करना है। लामण-गीत की अपनी अतिशयोक्ति देखे बनती है :—

सेर आणे मंगोहलू, पौथा आणे जुम्राणे।
उथड़ी धारा-न लाए लामण, लोका लोड़ी पोए तुआणे।

यहां लामण-गीत की मधुरता का उल्लेख है। यह मीठा, मधुर और रस युक्त गाना है इस में कोई सन्देह नहीं। परन्तु यहां तो यह बताया गया है कि ऊंची पर्वत-शिखा से लामण-गीत गाया तो नीचे वादी में सुनने वाले मंत्र-मुग्ध हो कर बेसुध गिर पड़े। ऐसा मोहित लामण-गीत ने श्रोताओं को कर दिया कि वे अपने होश खो बैठे। लामण-गीतों में सब से अधिक अतिशयोक्ति शृंगार-रस में हुई है। विरह में गला भर जाता है, खाना मीठा नहीं लगता, नींद नहीं आती, काम में दिल नहीं लगता, समय बीते नहीं बीतता यहां तक तो ठीक है ये सभी बातें विश्वास की परिधि में आ जाती हैं। परन्तु इस वियोग में हड्डियां, मांस बिलकुल गायब हो जाएं तो यह अतिशयता की पराकोटि है :—

खैरो री ताकड़ी, सांदणो री डांसो।
ईशा लागा भावटा, न रौही हाड़की न मांसो।

इसी तरह एक अन्य लामण में छाती जल कर राख हो गई है और हृदय का घूड़ा बन गया है :—

लाड़की झूरी रा जिभड़ू टिणके ढोला रा पूड़ा।
छाती जौलिया हुई भौसा री ढेरी, कौकड़ी जौलिया धूड़ा।

यहां एक और अतिशयोक्ति भी देखने योग्य है, जो सूक्ष्म के लिए स्थूल उपमान की अधिकता के कारण हास्यास्पद बन गई है। कहा है 'प्यारी प्रेमिका की जिह्वा ढोल के सख्त चमड़े की तरह है (जिस पर लकड़ी-काठी मारने से तेज़ ध्वनि निकलती है) छाती जल कर भस्म का ढेर हो गया है और हृदय जल कर धूलि बन गई है।' प्रेमिका की जिह्वा सूक्ष्म वस्तु मधुर वस्तु होती है, उस में मिठास है, परन्तु ढोल के पूड़े के साथ इसे जोड़ना उसकी खिल्ली उड़ाना है। इसके विपरीत सूक्ष्म का सूक्ष्म से सम्बन्ध जोड़ने पर अतिशयोक्ति होते हुए भी वह अखरती नहीं है :—

झूरी रा मुहंड़ू निम्बला जाइरू पाणी।
फूला सेंहीं सा हौल्की, गौला मूँ बिन्हिया लाणी।

:प्रेमिका का मुखड़ा निर्मल पानी के समान है। शरीर फूल की तरह इतना हल्का और कोमल है कि गले में (हार) पिरो कर लगा दूं। यहां नायिका की सुकुमारता की प्रतीति अतिरंजित उक्तियों द्वारा हुई है, परन्तु सूक्ष्मता का उपमान अधिक अतिशय होते हुए भी अनुपयुक्त नहीं लगता।

इस प्रकार लामण-गीतों में अनेक प्रकार के अलंकारों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। श्लेष, प्रदीप, संदेह, निदर्शना आदि के चमत्कारपूर्ण अलंकार इन गीतों में द्रष्टव्य हैं। हास्य-व्यंग्य इन गीतों का अत्यधिक-प्रिय विषय है। इस हास्य-विनोद के लिए लोक-कवियों ने वक्रतामूलक अलंकारों को जिस स्वाभाविकता से दर्शाया है उन के उदारहण देखने योग्य हैं। समाज में जो बात डांट-डपट या लड़ाई झगड़ा से सुलझती नहीं है, वह व्यंग्योक्ति से सहज ही ठीक हो जाती है। वास्तव में वक्रोक्ति ग्रामीण समाज के पास ऐसा साधन है कि उसका असर कई अन्य साधनों से अधिक प्रभावी होता है। किसी को हज़ार बार बुरे कामों से रोको, परन्तु उस पर कोई असर नहीं होता। एक ही व्यंग्योक्ति अवसर पर बोल दो प्राय: काया पलट जाती है। ऐसी वक्रोक्तियां, समासोक्तियां, अन्योक्तियां, पर्यायोक्तियां वास्तव में बड़े तीक्ष्ण हथियार हैं जो सीधा दिल पर चोट करते हैं और ऐसे उल्लेख न केवल विनोद के साधन हैं, वरन् सुधार के भी प्रभावशाली माध्यम हैं। एक स्वच्छन्द प्रवृति की स्त्री के लक्षण का अन्योक्ति द्वारा वर्णन देखें :—

बुन्हें धीरे सौहरा पीछे श्रांगणी गौही।
हौल कदाला सेहीं निबरी, ढाब नी पाणे बैं रौही।

यहां अप्रस्तुत हल और कुदाल से प्रस्तुत-स्त्री की प्रतीति करवाई गई है। अपनी चरित्र-हीनता के कारण स्त्री अपना शरीर और सौन्दर्य खो बैठी है। परन्तु सीधा उसे यह बात कहने के ऐसे हल और कुदाल की व्याख्या की है जो काम में लाने के कारण घिस-घिस कर इतने पतले हो गए हैं कि अब उन पर दूसरा लोहा चढ़ाया भी नहीं जा सकता। किसान घिसे हुए कृषि औज़ारों पर लोहार द्वारा कुछ नया लोहा ढाल देता है ताकि वह फिर काम में लाया जा सके। परन्तु यदि औज़ार बिल्कुल घिस गया है तो उस पर दूसरा लोहा चढ़ाना निरर्थक है। यही हाल व्यभिचारी स्त्री ने अपने शरीर का किया है। यहां अन्योक्ति द्वारा गायक ने मूल प्रस्तुत विषय को चमत्कारपूर्ण रूप से उद्धृत किया है। इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि लामण गीतों में अलंकारों की प्रचुरता ने उनके सौन्दर्य को बढ़ाया है। सरल और नितान्त ग्रामीण वातावरण से चयनित उपमान बड़े स्वाभाविक और प्रभावशाली अभिव्यक्ति करते हैं।

प्रतीक और बिम्ब

लामण-गीतों में प्रतीकों और विम्वों का अतिरंजित वर्णन मिलता है। फूल प्रेमासक्ति का व्यापक प्रतीक है। जहां वह सौन्दर्य का साधन और वहुधा-कथिक रूपक है, वहां यह प्रेमोपार्जन का भी मुख्य माध्यम है। यही कारण है कि इन गीतों में सर्वाधिक प्रयुक्त निरर्थक (और कहीं-कहीं सार्थक भी) तुक 'फुली करो फुलटू' या 'फूल फूलो फूलणू' आम सुनने में आता है। फूलों में भी विभिन्न प्रकार के फूल भिन्न भावनाओं के प्रतीक हैं—कूजा का फूल प्रेम में वेवफाई का प्रतीक है। कूजा सबसे लम्वी झाड़ी में उपजा सफेद से रंग का फूल होता है। इतनी लम्वी झुकी हुई झाड़ी सम्भवतः कोई और हो। लोकोक्ति है कि जव रामचन्द्र जी सीताहरण के वाद विलाप करते हुए पशु-पक्षियों, जड़–चेतन से सीता का पता पूछ रहे थे, तो कूजा से पूछने पर उसने कहा था "तौ लागी री सीता री, मूँ लागी री वरझणा री" (तुझे सीता की लगी है, मुझे वढ़ने की लगी है)। इस पर राम ने श्राप दिया था कि जा तू इतनी वढ़ कि 'तेरे गुली-मुण्डा-न ए लोड़ी त़ौड़े लागे' (तेरे सिर और पैर में ही जड़ें लग जाएं) और यह सत्य है। प्रायः कूजा झाड़ी का सिरा जमीन में धंस कर जड़ें पैदा करता है और आगे उगता है। यह वेवफाई लामण-गीत में व्यक्त होती है :—

फुली करो फुलटु, डाली फुलला कूजा।
तेरी मेरी नी बणदी ब्याह करना दूजा।

प्रतीक शब्दों में स्थान-विशेष की सांस्कृतिक-धारणा निहित होती है, यह उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। गुलाब का फूल यौवन से भरे सौन्दर्य का प्रतीक है। कांगू का फूल संयोग का प्रतीक है। इसी तरह चीड़ू (पक्षी) शब्द प्रेमी के लिए प्रयुक्त होता है। चीड़ू की जगह तोता, तीतर, चकोर, मनाल आदि पक्षी-विशेष के नाम भी लिए जाते हैं। मनाल शब्द सुन्दरता का प्रतीक है और 'पांखा-नांहिदा चीड़ू' प्रेमी की विवशता का द्योतक है, पंख टूटा हुआ पक्षी आखिर कहां जा सकता है। छोटे वच्चों के लिए 'चरेड़ा' (पक्षी का बच्चा) कहा गया है। हिऊं ∠ सं० हिम सर्वदा गोरे-मुखड़े या स्वच्छ-मन का प्रतीक रहा है। चन्द्रमा को सन्देश-वाहक के रूप में ही लिया गया है:—

जोथा दाईए तू लाए लाम्बड़ी झाड़े।
तू केर प्याशा, जौखैं बौसैं साजन म्हारे।

'चन्द्रमा तू वहां गहरा प्रकाश कर और वहां सन्देश पहुंचा जहां हमारे साजन बसे हैं।' इसी तरह :—

ज़ोथा बोलू दाईए बड़ा केरू ग्रासरा तेरा।
लोगूए गे देशादी जीऊ दुग्रासुग्रा मेरा।

'चन्द्रमा तेरी वहुत आशा करती हूं। लोगों के देश में जी उदास हो गया है मेरा (यह सन्देश प्रियतम को कह देना)।' और भी :—

ज़ोथ चनणीए मोंझ़ सौर्गा डूबी।
कुण दसला लोभी ज़ुआना-बे कौसरी नज़ारा खूबी।

'हे चन्द्रमा ! तू चलते-चलते बीच आकाश में ही डूब गई (स्थानीय भाषा में चांद स्त्रीवाचक है) अव मुझे वता यह कौन सूचना दे सकता है कि प्रियतम को किस की नज़र लग गई है।' वास्तव में उपर्युक्त ये सभी प्रतीकात्मक शब्द इन लामणों में अपने मूल अर्थ से किंचित हट कर किसी भाव-विशेष की अभिव्यक्ति के लिए रूढ़ हो गए हैं। अपने उपमान की शक्ति से ये किसी भाव के अर्थ की सांकेतिक रूप में अभिव्यक्ति करते हैं। 'भियाणु-तारा' प्रातः कालीन तारा है। चूंकि इस के तुरन्त वाद प्रातः का प्रकाश छंट जाएगा अतः इस भाव को लेकर 'भियाणू तारा' आशा की पूर्ति और नई उम्मीदों का प्रतीक वन गया है। इस प्रकार मूर्त्त वस्तु अर्थात् 'प्रातःकालीन तारा' से अमूर्त्त भाव 'आशा-पूर्ति' की अभिव्यंजना ही प्रतीक का मुख्य उदाहरण है, क्योंकि मूर्त्त द्वारा अमूर्त्त का प्रस्तुतीकरण ही वास्तव में प्रतीक है। लामणों के प्रतीकों में भी ग्रामीण वातावरण तथा अपने परिवेश की अनुभूति की झलक मिलती है। लामणों के प्रतीक अर्थ और भाव-व्यंजना से उतने ही सम्वद्ध हैं जितने आकार और धर्म से। 'डोलरा' फूल (गेंदा) मदमाती जवानी का प्रतीक है। यहां यह आकार और धर्म के कारण ऐसा रूप लिए हुए है। पूरा-फूला हुआ और लाल रंग का होने से यह जवानी का संकेत देता है और इस की भीनी-सुगन्ध मस्ती की द्योतक है। ज़ाइरू-पाणी (चश्मे का पानी) दिल की शान्ति का प्रतीक है। गर्मी दूर करके ठण्डक पहुंचाना शीतल जल का धर्म है, इसी गुण के कारण इस में सौम्यता का प्रतीकात्मक भाव निहित है। इस के विपरीत 'औगी री लूपी' (आग की लपट) विरह-वेदना की जलन की द्योतक है। विरह के कारण जो पीड़ा होती है उसे किसी सीमा-विस्तार में बांधा नहीं जा सकता। उस की गुरुता या गहनता समझ से सम्बन्ध रखती है व्याख्या वैयक्तिक रूप में अधूरी रह सकती है। इस अर्थ-संदर्भ की अभिव्यक्ति प्रतीक के सशक्त उपकरण से पूरी हो जाती है।

उपमालंकार के जो उपमान रूढ़िगत या पारम्परिक अर्थ ग्रहण करते हैं वे प्रतीक होते हैं; परन्तु उपमान लोक-कवि की कल्पना-शक्ति के उपज होते

हैं और कल्पना-शक्ति द्वारा वह जो चित्र खींचता है वह बिम्ब है। लामण-गीतों में ऐसे बिम्बों के उदाहरण व्यापक ही नहीं अत्यन्त मनोरंजक भी हैं। लामणों में बिम्बों की व्याख्या करने से पूर्व प्रतीक और बिम्ब के बीच अन्तर-विभेद करना जरूरी जान पड़ता है।

भाव और विचार मनुष्य के स्वाभाविक, जन्मजात और नैसर्गिक गुण हैं। इन भाव-विचारों को व्यक्त करना उसका प्राकृतिक धर्म-तत्व है। इन की सकुशल अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति कल्पना-शक्ति का सहारा लेता है। व्यक्ति के पास चाहे कितने अच्छे भाव और विचार क्यों न हो, यदि उसके पास इन की अभिव्यक्ति के लिए शब्द और कल्पना-तत्व नहीं है, तो उसके भाव और विचार मन के मनमें ही घुट कर रह जायेंगे। उन्हें दूसरों तक पहुंचाने का अवसर ही नहीं मिल सकेगा। कल्पना-शक्ति से मुक्त शब्द ही भाव-विचारों को आगे प्रसारित करते हैं। परन्तु शब्द भी हों, कल्पना-शक्ति भी हो फिर भी भाव-विचारों को प्रभावशाली और वास्तविक रूप नहीं मिलता जब तक स्व:अनुभूति से अभिव्यक्ति को बल न मिले। आत्म-अनुभव ही भाव-विचारों को सशक्त अभिव्यंजना दे सकते हैं। अनुभूति-विहीन अभिव्यक्ति विचारों को सही रूप नहीं दे सकती। सहजानुभूति के आधार पर कल्पना-शक्ति के द्वारा मनुष्य अपने भाव और विचारों को अपने शब्दों से जो चित्र बनाता है वह बिम्ब है। बिम्ब अंग्रेजी शब्द इमेज (image) का पर्यायवाची है। किसी वस्तु या भाव के समझने के लिए बिम्ब का होना जरूरी है चाहे वह परिकल्पित हो। जब कभी हम कोई नया शब्द सीखते हैं उस का कोई रूप हमारे मस्तिष्क में आ जाता है। साहित्यिक भाषा में बिम्ब शब्दों का ऐसा चित्र है जो कवि या लेखक अपने भाव या विचार को प्रकट या प्रस्तुत करने के लिए चित्रित करता है। किसी भाव, विचार या वस्तु को उपयुक्त रूप से समझने के लिए जब किसी अन्य जाने-बूझे भाव, वस्तु या विचार की समानता या सादृश्य से सहायता ली जाती है, तो उस अभिव्यक्ति को बिम्ब कहा जाता है। जिस प्रकार पूजा और भक्ति में फल प्राप्ति के लिए मूर्ति का स्थान है, उसी प्रकार लामण-गीतों में वातावरण की सजीवता के लिए बिम्ब का स्थान है।

काव्य में सादृश्य-विधान विशेष महत्व रखता है और लामणों की काव्यात्मक-शैली इस विशेषता को बड़ी निपुणता से अपनाए हुए है। सादृश्य-योजना के लिए उपमान का उपयोग किया जाता है जिस का उल्लेख पहले ही रूपक और उपमालंकार के अर्न्तगत किया गया है। जब एकांगी-प्रेम की चातक के साथ समता की जाती है तो 'चातक' उपमान है, जो स्थिति अनुसार उपमा या

रूपक अलंकार का विषय हो सकता है। उपमान अधिकतः व्यक्तिगत होते हैं। कवि अपनी कल्पना-शक्ति से प्रस्तुत उपमेय की कई अप्रस्तुत उपमानों से सदृश्यता बांध सकता है। परन्तु जब कोई उपमान किसी विशेष पदार्थ के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक हो जाता है। तब उपमान स्वतन्त्र न रह कर उस वस्तु या विषय-विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है, और रूढ़ या परम्परागत हो जाने पर प्रतीक बन जाता है। लामण-गीतों में यह हम पहले देख चुके हैं। जब किसी उपमान को शब्द-चित्र द्वारा साक्षात् दर्शाया जाए तो वह बिम्ब कहलाता है। इस शब्द-चित्र में उपमान के आकार, वर्ण, गन्ध, रस आदि भाव वर्णित होते हैं। अतः उपमान ही बिम्ब-निर्माण के साधन हैं, परन्तु हर उपमान बिम्ब निर्मित करे यह ज़रूरी नहीं है। जब मूर्त्त या अमूर्त्त प्रस्तुत (उपमेय) के लिए मूर्त्त उपमानों का प्रयोग किया जाए तो बिम्ब का निर्माण प्राय: होता है। पीछे कहा जा चुका है कि लामण-गीतों में चीड़ू (या पंछी) प्रेमी का और चिड़ी (चिड़िया) प्रेमिका के प्रतीक हैं; लामण में इन का बिम्ब-विधान भी देखते बनता है :—

नीलीए चिड़िए पांखड़ू तेरे चरीखे।
तेरी तेइएं झूरीए हौल् लोड़ी बौल्द बीके।

यहां झूरी (प्रेमिका) नीले रंग की चिड़िया के समान है जिस के पंख नोकीले (चीरदार) हैं, जिसकी खातिर हल और बैल भी कुर्बान हैं। पक्षियों की सुन्दरता से प्रेमिका के सौन्दर्य की समता दिखाना विशेष रूपक है, और इस सुन्दरता की रंग और आकार द्वारा व्याख्या करना सुन्दर बिम्ब का प्रमाण है। नदियों के किनारे छोटी-छोटी उड़ान लेता हुआ प्राय: एक पक्षी देखने में आता है उसे टाटरू कहते हैं। प्रेमिका के विरह में व्याकुल प्रेमी की दशा दर्शाते हुए इस पक्षी का बिम्ब प्रस्तुत है :—

नौदी रे खाटलो मौरू टाटरू चीशे।
जिन्हों-रे रूशो साजनो, तिन्होरा जीउण कीशे।

'नदी के किनारे रहने वाला टिटिहरी पक्षी टी–टी करता है, मानो प्यास से मर रहा है, जिन के साजन रूठ जाते हैं, उनकी भी यही स्थिति होती है।'

किसी भाव, अर्थ या प्रस्तुत मूर्त्त उपमेय के लक्षणों की अभिव्यक्ति के लिए कवि अपनी कल्पना शक्ति द्वारा किसी सदृश-वस्तु का बिम्ब चित्रित करता है। जब उस कवि-विशेष का वह वैयक्तिक बिम्ब रूढ़ या पारम्परिक बन जाता है, तो वह प्रतीक हो जाता है, अर्थात् एक ही बिम्ब की पुनः पुनः आवृति रूढ़ उपमान बन जाता है। इस प्रकार बिम्ब से प्रतीक बनते हैं परन्तु रूढ़ उपमान

भी विम्ब का रूप दे सकते हैं। लामण-गीतों में विरह-व्याकुल हृदय का प्रतीक घराट (घौठ) है, परन्तु कुछ सुन्दर विशेषणों तथा अनुकरणात्मक शब्दों के प्रयोग से विम्ब द्रष्टव्य हैं:—

शिल्हे नाला-न घौर्ट फिरू रूग-बुगड़ू रागे।
तेरी यादी-न मन लोभीया होरते कीभ़ीबे लागे।

इन्द्रियगम्यता विम्बों की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेपता है। इन्द्रिय-विषयी बिम्ब सहज ही प्रतीति का विषय बनते हैं। उपर्युक्त लामण में ध्वन्यात्मक चित्रण विम्ब को बड़ा सजीव बनाता है। लामण-गीतों में आने वाले विम्बों को मोटे तौर पर हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं:—

(१) **ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित बिम्ब।**
(२) **प्राकृतिक अवयवों से सम्बन्धित बिम्ब।**
(३) **अमूर्त उपमानों से सम्बन्धित बिम्ब।**

लामण-गीतों में सर्वाधिक विम्ब ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित हैं। अपने जीवन-यापन में लोगों का सबसे निकट सम्बन्ध कृषि से है। अत: अपने गीतों में भी लोग कृषि से सम्बन्धित कार्य-कलापों का विम्ब प्रस्तुत करते हैं। खेतों में गेहूं जब हरे-भरे होते हैं तो सरसों पीली फूली होती है, प्रियतम की जुदाई के कारण प्रेमिका का लाल-गुलाबी मुख ऐसा ही पीला पड़ गया है :—

हौरे गेहूं री जौचड़ी, पीउंली छेते री शाई।
पीउंला फीरू गलाबी मुंहड़ू जुआनी सा निबरी आई।

किसान हल चलाते हुए बीज प्रायः मुट्ठी से फेंकता है, परन्तु वह भूमि की नमी से अन्दाज़ा लगाता है कि बीज घना डालना है या पतला। परन्तु जुदाई की घड़ी निकट होने के कारण वह नमी के असूल को भूल जाता है और जहां पतला बीज डालना था वहां घना फैंक दिया। चित्र देखें :—

बाही बातरा दाणे री पाई दणेला।
तुसा लोका री लुणनी बाहणी, म्हारी आई जाणे री बेला।

इसी तरह लामण-गीतों में कृषि-उपकरणों के बिम्ब भी मिलते हैं। एक लामण में बुढ़ापे में झुकी कमर के लिए द्रान्ति का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। देर से प्रयोग द्वारा घिस-घिस कर बारीक रह गए कुदाल का बिम्ब भी एक छिनाल स्त्री के लिए प्रस्तुत किया गया है, जिसने व्यभिचार से शरीर को सुखा दिया है। जीवन के दूसरे पहलू भी लीजिए। स्त्रियां जब बरतन में दूध डाल कर मक्खन निकालने के लिए उसे बिलोती हैं तो एक लकड़ी के उपकरण का प्रयोग किया जाता है जिसे भांग के पौधे के छिलके 'शेल्ह' से बनी रस्सी से चलाते हैं। विरह के दिन गिनती हुई विरहिणी की क्षीन हुई उंगलियों का

वर्णन करते हुए उक्त प्रक्रिया का चित्र देखें :—

छाहटी छोलदे चूटी जेरी शेलो-री डोरी।
दिनड़ू गिणदे घौशी गूठी री पोरी।

सामान्य मानव-जीवन से अन्य सर्वाधिक प्रचलित विम्व वस्त्राभूषणों से सम्वन्धित हैं। विस्तर तथा विस्तर पर सोई विरहिणी की दशा के शब्द-चित्र देखें :—

थाले पछियाई मांदरी, ऊभे पछियाई सेली।
याद लागी एंदी लोभीरी, निंद्र कीभीबे एली।

'नीचे चटाई विछाई है, ऊपर वकरी की ऊन की चादर 'सेली'। परन्तु लेटे-लेटे प्रिय की याद आ रही है नींद कहां से आएगी ?' आभूषणों में शरीर के सभी अंगों पर लगाए जाने वाले भूषणों का वर्णन आता है। कायल-चील वृक्ष के तने की लकड़ी देहात में मशाल का काम देती है। लकड़ी को चीर कर लम्वी छड़ें वना कर उनके सिरों को जला कर मार्ग के प्रकाश के लिए हाथ में लेते हैं। कई वार हवा के झोंके से चील का जल रहा विरोजा सहसा बुझ जाता है और पथिक अन्धेरे में भटक जाता है। प्यार में भी कई वार ऐसा ही वेवफा साथी मिलता है, या दुर्भाग्य से साथी विछुड़ जाता है, चित्र देखें :—

जूठी शौली रा चिहटू भौकदा-भौकदा हीठा।
संग थी बोन्हू उमर भौरी-बे, धाउड़ी बौता-न रहीठा।

इस प्रकार ग्रामीण जीवन से सम्वन्धित अनेक विम्व लामण-गीतों में मिलते हैं। घर-आंगन से लेकर खेत-खलियान तक जो उपकरण मिलते हैं तथा उनसे जो क्रियाएं होती हैं उन उपकरणों और क्रियाओं के विम्व इन गीतों में यत्र-तत्र प्रस्तुत हुए हैं। लामण-गीतों के विम्वों की दूसरी श्रेणी प्रकृति और प्राकृतिक अवयवों से सम्वन्धित है। इस प्रकार के सर्वाधिक विम्व वृक्षों से सम्वन्धित हैं। एक लामण में चील के वृक्ष की लम्वी-पतली शाखाओं का विम्व प्रस्तुत करते हुए प्रेमिका के रूप का भाव प्रकट किया गया है :—

चीला रीए बूटीए, लाम्बे दे लाम्बे झलारे।
ओरो दे गो हाथड़ू, मेरे आणे नौइए पारे।

इस विम्व के पीछे मूलतः प्रेमिका है, जिस से हाथ बढ़ाने का अनुरोध है। परन्तु प्रकटतः वृक्ष की फैली शाखाओं का चित्र है जिन के सहारे नदी के दूसरी ओर पहुंचने की वात है। जो वृक्ष छोटा और फैला हो वह किंचित स्थिर रहता है अपेक्षा उस वृक्ष के जो लम्वा, सीधा और कम फैला हो। जो पतला और लम्वा वृक्ष होगा वह सर्वदा झूमता रहता है, क्योंकि मामूली वायु भी उसे इधर उधर डोलती रहती है। ऐसे वृक्ष का विम्व खींचते हुए एक लामण में स्त्री

के चरित्र का वर्णन है जो कभी सहमत नहीं होती, प्यार करते-करते भी उसकी तृप्ति नहीं होती :—

छोटकी काइलीए लोमी लबौहड़ रौईए।
भ़ूरदे-भ़ूरदे मेरी भ़ूरीए, तौ की हिरख पौईए।

यहां प्रेमिका के सुडौल और लम्वे शरीर को रौई (देवदार की किस्म) वृक्ष की लम्वी वूटी के विम्व से और उसके अस्थिर मन को वृक्ष की झूमती चोटी के विम्व से दर्शाया गया है। यहां विम्व में सप्रसंग चित्रात्मकता अंकित हुई है।

संवेदना विम्ब की आधारभूत शिला होती है। कवि या गीतकार विषय के प्रति अपनी संवेदना को जो चित्र देता है वह पाठक की संवेदना को जागृत करता है। कवि की ऐंद्रिक संवेदना का प्रतिपादन जिस ढंग से विम्व द्वारा सफल होता है वैसा प्रतिनिवेदन अन्यथा नहीं हो सकता। लामण-गीतों के रचनाकार मूलतः संवेदनशीलता से जितने प्रभावी होते हैं, उतने ही उनके लामणों में शब्द-चित्र अधिक सजीव होते हैं। कवि की ऐन्द्रिक संवेदना जब शब्दों का चित्र धारण करके पाठकों के लिए इन्द्रियगम्य हो जाती है, वही सर्वव्यापक विम्व है। दुख के झमेलों से त्रस्त व्यक्ति की व्यथा को एक लामण में जिस रूप से व्यक्त किया गया है, उसका सर्वांगीन विम्व देखे बनता है :—

सौर्ग मेढ़ू काले बादले, रीउण मेढ़ू शवाले।
लूड़ीए मेढ़ू बौता रा तालरू, भ़ूरी मेढ़ी दुखे जंजाले।

यहां पूर्ण वातावरण का चित्र प्रस्तुत है। और दुखों की एक अनुभूति को विभिन्न विम्बों द्वारा दर्शाया गया है। अनेक बिम्बों के समन्वय से अनुभूति की गहनता का आभास स्पष्ट हो जाता है। 'आकाश (सौर्ग, स्वर्ग) काले बादलों से ढका है, रीउण (बड़े गोल पत्थर को काट-तराश कर परात की शकल में गढ़ा जाता है जिस में कपड़े धोते हैं कई दिनों तक पानी खड़ा रहने से उसमें हरी बारीक घास जमती है, उसे शवाल (सिवार) कहते हैं शवाल ∠ सं० शैवाल से मंडित है, तरु (तालरू-वृक्ष) लताओं द्वारा ढका हुआ है, और वैसे ही प्रेमिका दुःख जंजाल से दव गई है।' एक ही उपमेय को विभिन्न उपमानों के बिम्बों से अभिव्यक्त करना लोक-मानस की अनुभूति की गहनता का प्रमाण है। एक ही स्थिति को तीन मूर्त्त बिम्बों की सहायता से रूपायित किया गया है।

हम पीछे देख आए हैं कि फूल भरी जवानी का प्रतीक बन गया है। परन्तु कुछ लागणों में विभिन्न प्रकार के फूलों का रंगाकार वर्णन दे कर बिम्बात्मक चित्र प्रस्तुत हुआ है। गुलाब के फूल की भान्ति ही परन्तु उस से बहुत अधिक बड़ा तथा लाल वरास का फूल होता है, जिस का वृक्ष भी बड़ा

होता है। इन दोनों फूलों का चित्र देते हुए किसी युवती के लाल होंठों और गालों की रंगत में आए पीलेपन की चर्चा हुई है :—

लाल गलाबा रे झारटू, बराह फुलले रुखे।
की हुआ तेरे लाल गलोटा-बे, पीउंल फिरे दुखे।

ऐसे लामणों में रंगों का वर्णन विशेष उल्लेखनीय है। रंग और आकार की रेखाएं विम्ब को सजीव वनाती हैं। लामण-गीतों के प्राकृतिक परिवेश के विम्बों में नदी, नालों, पर्वत, हिमाच्छादित शिखरों का विशेष स्थान है। प्रतीक्षा में वैठी आंखों की टिकटिकी के लिए नदी की अविरल धारा का विम्व चित्रित किया गया है। गोरे मुखड़े के लिए 'हिऊंआ री धारा' (हिम धारा) का विम्ब प्रस्तुत हुआ है। प्राकृतिक विम्वों में आकाशीय प्रकाश के भी वहु-चर्चित विम्व लामण-गीतों में विद्यमान हैं। आकाश में कहीं काली बादली का रूप है तो कहीं तारों का झुरमुट। लोक-कवि तारों का चित्र बांधते हुए किसी सर्वाधिक चमकीले तारे का रूप भी वर्णित करता है और उसे नाम भी देता है यथा—'तारा निकता हीरू'; हीरू से अभिप्राय: चाहे हीरे से हो या हरे रंग के तारे से। प्रेमिका के मुख की गम्भीरता के लिए पौष-माघ की काली रात का विम्ब दिया गया है, जिस में तारों का प्रकाश आशाओं का संकेत देता है। चन्द्रमा से प्रकाशित रात्रि का विम्ब युवती के सौन्दर्य को दर्शाने के लिए चित्रित हुआ है।

जहां तक अमूर्त्त उपमानों के विम्वों का सम्वन्ध है यह उल्लेखनीय है कि ये विम्व अधिक स्पष्ट लक्षित नहीं होते। कारण यह है कि इनका सम्वन्ध वाह्य-इन्द्रियों से निकट न हो कर भावों से अधिक निकट होता है। ये भावात्मक विम्व होते हैं। स्नेह, कठोरता, दुख की गहनता के लिए प्राय: ऐसे चित्र अधिक दीखते हैं। अन्धेरे का विम्ब प्रस्तुत करना प्राय: कठिन है, परन्तु स्थितियों का उल्लेख करके जो चित्र निम्नांकित लामण में प्रस्तुत है उस में विम्ब का विधान कुशलता से सफल है :—

पोशा माघा री निहारखू राती-न, कुण्ही पोई कुण्ही निहारी।
आमा बापू तांई पिहर पेऊका, भाई तांई रिश्तादारी।

पौष और माघ की रातें लम्वी और अन्धेरी होती हैं परन्तु इस अन्धेरे का चित्र तव स्पष्ट होता है जब घर के चारों कोण काले रंग के हुए वताए गए हैं। इस अन्धकार की गहनता लामण के दूसरे चरण में और तीव्र हो गई है – जब तक माता-पिता हैं तब तक विवाहित पुत्री के लिए मां-वाप का घर मायका है। उन के बाद भाई के होते हुए साधारण रिश्तेदारी रह जाती है, और भाई के भी न रहने पर पुत्री के लिए उसका जन्म का घर पूर्णत: पराया हो जाता है न मायका न

रिश्ता। ऐसे विम्ब प्रायः अनुभूति से सम्वन्ध रखते हैं। मनोदशा की अभिव्यक्ति का केवल अनुभव हो सकता है उसे देखा नहीं जा सकता। लामणों में शरद, हिम, वसन्त और वर्षा ऋतुओं के विम्ब इसी श्रेणी में आते हैं। सुख, दुख, भूख, प्यास, बेचैनी आदि भाव जिस रूप में व्यक्त होते हैं उनके चित्र आंखों के सामने तो नहीं आते परन्तु अनुभूति से वाहर नहीं होते। प्रतीक्षा का विम्ब एक लामण में देखिए :-

शाड़ो पोड़ली संधुलकी, शावणों आधड़ी राती।
भादवें होली भ्यांसरो, भेवली शौजो री राती।†

जुदाई के प्रथम क्षण सन्ध्याकाल के समान हैं। ज्यों-ज्यों समय अधिक बीतता है विरह की दशा और अधिक कष्टदायी होती है, वह आधी रात के समय के समान है, परन्तु अन्ततः मिलने की आशा भोर-समय की तरह है और पुनःमिलन प्रातःकाल। यही दृश्य इस लामण-गीत में चित्रित है—'आषाढ़ महीने में सायंकाल होगा, श्रावण में आधी रात, भादों में भोर तथा आश्विन में प्रातःकाल होगा।' ऐसे विम्ब यद्यपि स्पष्टतः अधिक नहीं मिलते, परन्तु यदि लामण-गीतों के अर्थ को गहराई से देखा जाए तो इनका विधान अत्यन्त महत्वपूर्ण मिलेगा।

इस प्रकार विम्ब की दृष्टि से लामण-गीत वड़े विशिष्ट महत्त्व अपनाए हुए हैं। इनके विम्ब परम्परागत न हो कर इस पहाड़ी क्षेत्र के ग्रामीण-जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। जहां रूढ़ उपमानों का प्रयोग हुआ है, वहां भी लोक-कवियों ने विशेषणों के प्रयोग द्वारा तथा रंगों की रेखाओं के सहयोग से विम्ब को सजीव वनाया है। एक ही लामण में एक ही प्रस्तुत उपमेय को विभिन्न उपमानों के चित्रों से उसके गुण के विशिष्ट पहलुओं को अभिव्यक्त करना इन बिम्वों का मुख्य लक्षण है। सहजानुभूति और भावात्मक अभिव्यक्ति से सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष भी इन विम्वों में दर्शाए गए हैं। अनेक विम्ब में समाज में प्रचलित कुरीतियों का भी उल्लेख इन लामण-गीतों में हुआ है। विशेषतः भावात्मक बिम्बों में ऐसे उदाहरण वड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

छन्द-विधान

जैसा कि पहले लिखा गया है लामण-गीत लोक-मानस से उपजे ग्रामीण गीत हैं। प्रकृति इनकी रमणीय स्थली है। ये वन-फूल की तरह स्वतन्त्र वातावरण में उत्पन्न हुए हैं। अतः साहित्य-शास्त्र के मान-दण्डों से इन्हें जांचना

† भाषा, कला एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित शोध पत्रावली भाग ३, पृष्ठ ४२ लेखक डा० खुशीराम गौत्तम।

उचित नहीं है। ग्राम गीतों के बारे में पं० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं 'ग्राम गीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्राम-गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम गीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य निर्मित। ग्रामगीत प्रकृति के उदगार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है। छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।'† यह बात लामण-गीतों के बारे में शब्दश: ठीक है। अतः लामण-गीतों में छन्द की समीक्षा उचित प्रतीत नहीं होती। लोक-कवि लामण रचते हुए छन्द के नियमों को याद करने नहीं बैठते, न ही उन्हें मालूम है कि लामण की रचना के लिए कोई छन्द के नियम भी होते हैं। वे केवल अपने मन के उदगार की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित होते हैं। और इस उदगार-अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता होती है। ऐसी स्वाभाविकता में काव्यशास्त्र के मौलिक आदर्श स्वतः प्रविष्ट हों तो ये लामण-गीतों के विशिष्ट गुण अवश्य माने जाएंगे।

लामण-गीतों में लय और ताल का महत्त्व पहले देखा जा चुका है। यही लय और ताल लामण-गीतों के छन्द के मूल तत्त्व हैं। लयांश के कारण ही लोक-गीत श्रुति-मधुर होते हैं। स्वर-माधुर्य इनका मुख्य उद्देश्य है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लय-ताल को बढ़ाना-घटाना गीतकारों का सामान्य नियम होता है। लय पर आश्रित होने के कारण इन गीतों में वर्णिक और मात्रिक छन्दों का विशेष स्थान नहीं है। लामण-गीतों में स्वर और ताल-लय मुख्य होने के फलस्वरूप इनकी मात्राओं या अक्षरों की गणना करना व्यर्थ का प्रयास है। लोक-कवि मात्रा या अक्षरों की गिनती करके नहीं चलता। वह केवल लय बनाए रखता है और इस क्रम में सुन्दरता लाने के लिए यति और गति का विशेष महत्त्व है। अतः मूल रूप में लामण-गीतों के चरणों की मात्राओं और वर्णों को गिन कर छन्द-विधान निर्धारित करना युक्तिसंगत नहीं है, यद्यपि यह सत्य है कि स्थान-स्थान पर के लामण-गीतों में वर्ण-मात्राओं में कुछ समानता मिलती है। परन्तु यह समानता सप्रयास नहीं है। लय ताल की वृत्ति में ऐसी समानता कहीं-कहीं आ जाती है। ऐसी समानता भी मात्राओं की अपेक्षा वर्णों में अधिक मिलती है, जैसे—

तेरा मेरा संग लोभीया, सराजी पूला री जोटा।
शौशू शौरे शिरा पगड़ी, देउर पाणी रा लोटा।

इस लामण के प्रथम चरण में 9 और दूसरे चरण में 8 वर्ण और कुल 17 वर्ण हैं। ठीक यही संख्या तीसरे और चौथे चरण की है अर्थात् तीसरे में 9, चौथे

---

† पं० रामनरेश त्रिपाठी : ग्रामगीत, पृष्ठ 9।

में 8 और कुल 17 वर्ण। इसी तरह एक और दोहा लीजिए। इस में भी वर्णों की संख्याएं उपर्युक्त दोहे के समान हैं :—

कोहड़ी ऊना रा लाहटू, शालरी ऊना री पूणी।
ऊंघ सा मुँडा-न दाहिरा, लोभीरे हीकटे रूणी।

परन्तु सभी लामणों में वर्णों की संख्या इसी समान मिलती हो यह वात नहीं है। मूल रूप में लामण गीतों की सुन्दरता गायक की यति पर निर्भर है, एक सांस में एक वार वह जितना कह डालता है, उतने का ही एक चरण वनता है। जैसा कि पहले लिखा गया है लामण-गीतों को काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों में वांधा न जा सकता परन्तु एक वात वड़ी स्पष्ट है कि अपने-आप में हर एक लामण के चरणों में पारस्परिक संतुलन अवश्य रहता है। सभी लामण गीतों में यह संतुलन एक समान हो, ऐसा स्वीकार करना कठिन है, परन्तु एक ही लामण-गीत के चार चरणों का आपसी समगुरुता अवश्य रहती है। इतना अवश्य है कि सभी लामण-गीतों में प्रायः समचरण आपस में समान होते हैं और विषम चरण अपने में अलग समानता रखते हैं। वहुत से झूरी-गीतों में प्रायः यह देखने में आता है कि उनके समचरणों अर्थात् दूसरे और चौथे चरणों में आठ वर्ण होते हैं और विषम चरणों में प्रायः ग्यारह या वारह वर्ण होते हैं। जहां कहीं यह संख्या पूरी नहीं मिलती वहां प्रायः ताल और लय का संयोग होता है। इस प्रकार झूरी-लामण-गीतों का छन्द प्रायः गीतिका छन्द से मिलता है, यथा—

जागणो खे बोलो झूरीए कुकड़ी, सुतणे खे चेईं होड़ा।
साथो खे चेईं बोला मेरा फुलटू, जिइश्रा रूई रा गोड़ा।

यह वात नहीं भूलनी चाहिए कि लोक-कवि को न छन्द-शास्त्र का ज्ञान है और न ही वह वर्णों या मात्राओं की गिनती को गीतों के सर्जन के लिए ज़रूरी समझता है। वह अपनी लय में गाता है और गीत-विशेष की लय स्वतः वर्ण-मात्राओं की ताल-मेल को समंजित करती है। गीतिका छन्द लम्वे स्वर के गीतों और विलम्वित ताल के लिए अत्यन्त उपयुक्त छन्द माना जाता है। हृदय की मार्मिकता और प्रणय की अनुभूति की अभिव्यंजना के लिए लम्वे-लम्वे छन्दों की आवश्यकता होती है। यह अनिवार्यता गीतिका छन्द के स्वाभाविक रूप से पूरी होती है। भले ही लामण में वर्ण-गणों या मात्राओं का क्रम गीतिका से पूर्णतः मेल न खाता हो तो भी झूरी गीतों का गीतिका छन्द से सम्वन्ध स्पष्ट लक्षित होता है। ताल-लय की न्यूनता या अधिकता वर्ण-मात्राओं की संख्या को पूरी कर देती है :—

शावणो रीए बोलो कौहेड़िए, शावणो री जेरी रातो।
तेरे मेरे मिलणो री गोईए, आगले जुगो खे बातो।

लामण की ही लय को जरा वदल कर जो गीत गाया जाता है उसे कुल्लू आदि कुछ स्थानों में चाहुटा (व· व· चाहुटे) कहा जाता है। चाहुटा संस्कृत चतुष्पदः का तद्भव रूप है। इसे गाते समय मूल लामण के किसी चरण को दोहराया नहीं जाता, जैसा कि लामण में प्रायः ऐसा होता है। लामण में दूसरे चरण की पुनरावृति जरूरी है (कुछ क्षेत्रों को छोड़ कर)। इस प्रकार चाहुटा लामण में चतुष्पदः छन्द का प्रयोग मिलता है। इसमें चार पद (चरण) होते हैं। हर चरण के वाद यति होती है। इसके अन्त में, अर्थात् समचरणों के अन्त में प्रायः दो गुरु होते हैं। दो गुरु होने से यह अधिक कर्ण-मधुर होता है। वहुत से लामण-गीत चाहुटा अर्थात् चतुष्पद की श्रेणी में ही आते हैं। इस के सभी चरण प्रायः वरावर होते हैं, कमी को लय या टेक से पूरा किया जाता है। वर्णों की संख्या निर्धारित नहीं, परन्तु देखने में आता है कि जितने वर्ण प्रथम चरण में हों प्रायः शेष चरणों में भी वही संख्या रहती है। यही चतुष्पदः लामणों की विशेषता है। ऐसे अधिकतः लामणों में वर्णों की संख्या प्रत्येक चरण में प्रायः सात या आठ देखने में आती है, जैसे—

1. **ज़ौऊ पौके पिउंल़े, हौरे गेहूं री सेरी। 7+7=14**
तेरे दोहे–लामणे, मोंझ़ा बौता भलेरी। 7+7=14
2. **मेटी फूली कूसमी, बेऊड़ी फूली ज़ूही। 7+7=14**
दसा देई बोलणे, मिली रौहणा दूही। 7+7=14
3. **फूली कौरो फूलटू, डाली फुललो शांछी। 7+7=14**
तौ बिना एरा फिरो, जेरा घायलो पांछी। 7+7=14
4. **गाड़ बौहे गाड़ीए, ढोंके न आंदी कूला। 7+7=14**
बाड़ी शूकी जिंदड़ी, हौरे तंबाकू फूला। 7+7=14
5. **हौल़ा बाया हाल़ीए, कुजिया रोए लाखा। 7+7=14**
ईशा फिरा ग्रोड़दा, जिशा पाणीए पांखा। 7+7=14

उपर्युक्त कुछेक लामणों के उदाहरण हैं। इनमें प्रत्येक चरणों में नपी-तुली वर्ण-योजना मिलती है। परन्तु हर लामण-गीत में इतने ही वर्ण हों यह सत्य नहीं है। हां, इतना स्पष्ट है कि चारों पदों के वर्णों में ताल-मेल अवश्य रहता है। कई लामणों में सम और विषम चरणों में यदि साम्य न हो तो प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय तथा चतुर्थ चरणों में आपसी साम्य रहता है। प्रथम पद के दो चरणों की वर्ण-संख्या आपस में मेल खाती है और दूसरे पद के दो चरण आपस में अनुकूल होते हैं। परन्तु, यह स्पष्ट है कि वर्ण-योजना की यह साम्यता किसी मस्तिष्क प्रयास के कारण नहीं है, वरन् यह योजना ताल और

लय से नियन्त्रित होती है। न केवल वर्ण-संख्या में ये चरण समान हैं, अपितु यदि ध्यान से देखा जाए तो मात्राओं के आधार पर भी इनमें समानता लक्षित होती है।

जैसा कि पीछे कहा गया है कुछ क्षेत्रों में लामण को दोहा भी कहते हैं। और साथ ही साथ बाह्मणु तथा भौंरू शब्द भी चलते हैं। ये चारों शब्द प्रायः समानार्थक हैं और एक दूसरे का स्थान लेते हैं। कई बार ये साथ-साथ प्रयुक्त हुए भी मिलते हैं। एक उदाहरण ऊपर दोहा सं० 1 में देखा जा सकता है जहां दोहे-लामण इकट्ठे आए हैं; इसी तरह—

मोंझ़ मदरशा फेर फिरदी शाढ़े री बूटी।
जेबे शुणें तेरे दोहे-लामण हौथा री कलमा छ़ूटी।

और

सौहा नौचले देउआ रे देऊल़, बोणा नौचले गूणी।
मूं सी लाणे दोहे-बाह्मणू, कोनड़ू लाया शूणी।

'दोहा' शब्द संस्कृत तत्सम शब्द दोहा ही है। और दोहा सर्वप्रसिद्ध छन्दों में से है। तुलसी दास जी का रामचरित मानस दोहा और चौपाई छन्दों का सरस सामंजस्य प्रस्तुत करता है। कुछेक दोहे-लामण इस दिशा में खरे उतरते हैं। 'दोहा' छन्द में कुल चौबीस मात्राएं होती हैं; विषम चरणों अर्थात् पहले और तीसरे चरणों में तेरह-तेरह और समचरणों (दूसरे और चौथे) में ग्यारह-ग्यारह मात्राएं होती हैं। निस्सन्देह लामण स्वछन्द गति से चलते हैं, फिर भी दोहा छंद के लक्षण कुछ लामण-गीतों में स्पष्ट पाए जाते हैं, उदाहरणार्थ निम्नलिखित दोहे-लामण देखे जा सकते हैं—

शोझा निकती बादली, भुइण निकता तारा।
सूरजा बिछड़ी चंदर, संग बिछड़ू म्हारा।

(शोझा पर्वत-शिखा पर बदली छाई है, भूंतर नगर के ऊपर तारा निकला है। सूर्य से विछुड़ा है चन्द्रमा, संग विछुड़ गया हमारा)। इस दोहे के प्रथम चरण में तेरह, दूसरे में ग्यारह, तीसरे में तेरह और चौथे में ग्यारह मात्राएं हैं। इस तरह यह दोहा-छन्द का उत्तम उदाहरण है। कुछ और उदाहरण देखें :—

फूली कोरला फुलटू, डाली फुलला कुजा। 13+11=24
हिये भीतरी मूरतो, होर नि सुखदा दुजा। 13+11=24

इसी तरह :—

बिजिए मेरी गोणिए, जग मग दिशो तारे। 13+11=24
हामे न बोलो बिछड़े, बिछड़े करम म्हारे। 13+11=24

और भी :—

नाले बाज़ाली विशली, धार रुणकी रागे। 13+11=24
दाची शोटले किलणी, राग शुणदे लागे। 13+11=24

इन उदाहरणों से यह नहीं समझना चाहिए कि लामण-गीत छंद-शास्त्र के नियमों का पालन करते हैं। वास्तव में यदि छंद-विधान की प्रथा मिलती है तो केवल इसलिए कि लय और ताल की गति से यह स्वतः निर्मित है। इनमें जहां वर्णों की समानता दिखाई देती है, वहां मात्राओं की समान संख्या भी उपलब्ध है। परन्तु चाहे वर्णिक साम्यता हो या मात्रिक, यह समानता प्रयत्न-शील प्रयास द्वारा नहीं लाई गई है वरन् स्वाभाविक रूप से लय, ताल और स्वर से शासित हुई है। लामण-गीतों में ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं जहां ऐसी समानता दिखाई नहीं देती, बल्कि कई बार अन्तिम दो चरण इतने लम्बे होते हैं कि उनका प्रथम दो चरणों से कोई मेल नहीं बैठता, जैसे—

तौउए बी तौउए, घौड़ुए लोहे रे तौउए।
जुण झ़ूरी लोड़ी थी नज़रा पांधे,
सो न्हौठी धारा री लौउए।

(तवे भी तवे, घड़े लोहे के तवे। जो प्रेमिका चाहिए थी नज़रों के सामने, वह गई पर्वतों की ओट में)। वास्तव में छन्दों सम्बन्धी यह विधान गायक की यति पर निर्भर करता है। एक सांस में गायक जो कुछ गा देता है वह एक चरण बनता है, दूसरे सांस के शब्द दूसरा चरण बनाते हैं। शब्दों की न्यूनता-अधिकता वह लय या स्वर के बढ़ाने घटाने से पूरी करता है। लोक-गीतों की समीक्षा में इस तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता।

रस परिपाक

रस गीतों की आत्मा है। छन्द और अलंकार काव्य के कृत्रिम आभूषण हैं। लोक-गीत इस कृत्रिम सौन्दर्य से दूर रहते हैं। जीवन की स्वाभाविक अभिव्यंजना के लिए रसानुभूति ही लोक-गीतों की मुख्य विशेषता है। लामण-गीतों में भी कृत्रिमता, बाह्य साज-सज्जा का कोई महत्व नहीं है। रस ही उनका जीवन, प्राण और आत्मा है। उनमें रस की धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती है। लामण-गीतों को मुख्यतः प्रणय-गीत माना जाता है। अतः स्वाभाविक रूप से शृंगार रस की इनमें प्रधानता है। परन्तु इनका रस परिपाक केवल शृंगार रस तक सीमित रहा हो, ऐसी बात नहीं है। मानव जीवन की मौलिक

प्रवृत्तियां लामण-गीतों में नाना प्रकार की अभिव्यंजनाओं द्वारा प्रस्तुत हुई हैं। इन अभिव्यंजनाओं में अनेक रस व्यक्त होते हैं। यही रसात्मकता लोक जीवन को हरा-भरा वना देती है। लामण-गीतों में श्रृंगार की प्रधानता होते हुए भी मानव जीवन के विभिन्न भावों-अनुभावों की सहज अभिव्यक्ति मिलती है। प्रस्तुत संग्रह में विभिन्न रसों के सम्वन्ध में पर्याप्त व्याख्या हुई है। यहां केवल दो अन्य रसों का उल्लेख किया जाना अपेक्षित है।

करुण रस

विरह की स्वाभाविक अनुभूतियां 'शोक' स्थायी भाव को जागृत करती हैं और वही **करुण** रस को उत्पन्न करता है। लामणों के बहुत से विरह-गीतों में करुण रस की मार्मिकता और मनोरमता अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई है। इन में प्रयुक्त शब्दों ने करुणा की जो झांकी प्रस्तुत की है वह अति अनुपम है। विरह-वर्णन से संसार भर का साहित्य भरा पड़ा है। हिन्दी साहित्य में भौंरे और काग विरहिणी के संदेश ले जाते हैं। उनको विरह की आग का धुआं लगना हास्यस्पद दृश्य है। परन्तु लामण गीतों में जिस स्निग्धता के दर्शन होते हैं वह किस के हृदय में चोट नहीं पहुंचाती—

जूनी बी जूनी फूटे भागे री हिकड़ू भोन दी जूनी।
याणे-बाले-बे हुआ मौरना, चोड़ी सो डाल् री रूणी।

यहां स्थायी भाव 'शोक', आलम्बन विभाव 'जवान की मृत्यु', उद्दीपन विभाव एकान्त डाली, अनुभाव 'चिड़िया का रुदन' और संचारी भाव 'हृदय-विदारक कष्ट' के पूर्ण समावेश से करुण रस का मार्मिक दर्शन होता है। जिनके भाग्य फटे हों, उनका शोक और कष्ट हृदय-विदारक होता है। भरी जवानी में मृत्यु हो गई है, जिसके शोक में एकान्त डाली पर बैठी चिड़िया भी रो रही है। वियोग के कारण दुख का इतना सरस, सजीव और हृदय-द्रावक वर्णन कहां उपलब्ध हो सकता है। पति और पत्नी के साथ की उमर भर के लिए कामना की जाती है। यह सुख और दुख का साथ है। एक लामण में एक की उपस्थिति दूसरे के लिए वैसी है जैसे मार्ग का वृक्ष 'बौता रा झारटू' जो सरदी और गरमी में शरण देता है, थकान के समय विश्राम का साधन है। यदि कोई पापी इसे काट दे तो एक अंग के काटने से सांस कैसे गति में रह सकता है—

चाहड़ी चौरले घोरड काकड़, जोड़े बराघणू धारा।
कुणी पापीए काटू बौता रा झारटू,
शाह रौहू धाउड़ा म्हारा।

करुण रस से भरे इन लामण-गीतों से हृदय में स्वतः ही दया, ममता, सहानुभूति, सहिष्णुता और प्रेम की पावन धारा प्रवाहित होती है। ऐसी भावनाएं और अनुभूतियां स्वतः उद्दीप्त क्यों न हों जब दिवंगत शरीर को 'यम का कैदी' जैसे मार्मिक शब्दों से व्यक्त किया हो और उस का फरंगी (अंग्रेज़ी) के कैदी से तुलना की हो :—

सोंझ पोई सोंझणी, नाला खरुहड़ू बाठा।
फरंगी रे कैदू आए घौरा बे, जोंआं रा कैदू राठा।

'सांय का अन्धकार फैला है, नाले में उल्लू ने भयानक चीख भरी है। अंग्रेज़ों के कैदी घर आए हैं, परन्तु यम का कैदी हमेशा के लिए गुम हो गया है'। इस प्रकार विरह-व्याकुल हृदय की मूक वेदना और करुण-गाथा अनेक लामण-गीतों में व्यक्त हुई है। नारी का जीवन ही दुख तथा रुदन का दूसरा नाम है। जन्म से लेकर मरण तक उसका जीवन करुणा की लम्बी कहानी है। उसका जन्म ही शोक का घोर अन्धकार लिए आता है। उसे डांट-डपट और धिक्कार से जीवन आरम्भ करना पड़ता है। विवाह के बाद वह सच्चे प्रेम की अकांक्षा करती है, परन्तु उस की इच्छा प्रायः पूरी नहीं होती। उमर भर का दुख उसे यह कहने के लिए विवश करता है कि हे प्रिय ! तुम ने हमारे सच्चे प्रेम की कदर नहीं की। मेरे प्रेम को ठुकराया। तुम अब मेरे प्यार का तब अनुभव करोगे जब मेरा मृत शरीर घर से बाहर आंगन में निकाला जाएगा : —

साजा माघा रा खाऊ पछौता बौड़ा।
तौधी केरी झूरना लोभीया, जौधी खौला ताढ़िला मौड़ा।

शांत रस

लोक-कवि या गायक समाज का कर्मठ व्यावहारिक प्राणी है। शिष्ट साहित्य के कवि की तरह कल्पना जगत में रहने वाला वासी नहीं है। लोक-गायक संसार की असारता को अधिक निकटता से जानता है। वेदान्त शास्त्र का अध्ययन भले उसे प्राप्त न हो परन्तु उस का दैनिक जीवन उसे इतना कटु-अनुभव प्रदान करता है कि वह इस संसार की अनित्यता को स्पष्ट देखता है। अतः परलोक को न जानता हुआ भी पारलौकिक जैसे सुख की कामना उस में निहित है—

देऊ डाहू डेहरे, देवी डाही मण्ढारा।
जींदे जीऊए केरी झूरना, मौरिया फूला री हारा।

'देवता रखा है देवगृह में, देवी रखी है भण्डार (मन्दिर) में। जीते जी करो

प्यार, मर कर फूल की हार (पहनाना) ।' यही शान्त रस का पूर्ण उदाहरण है। मृत्यु के बाद पश्चाताप किस बात का है ? जीते जी सुख और प्यार का अनुभव ही सच्चा सुख है। सांसारिक मोह-माया क्षणभंगुर है। इसे त्याग कर ही सुख की प्राप्ति सम्भव है—

ठाण्डे पाणी रा डिभणू, घुटू लाऊ घुट्टुए पीणा।
चौऊ दिहाड़े री जिन्दड़ी, केती जलमा जीणा।

'ठण्डे पानी का चश्मा, घूंट-घूंट कर (पानी) पिया है। चार दिन की जिन्दगी कितने युग जीना है ?' मनुष्य मूर्खता के कारण धन-दौलत, रूप-यौवन में आवन्द लेता है, जो मिथ्या है। यह सव आना-जाना है। जैसे सावन और भादों की हरियाली हमेशा नहीं रहती, वैसे ही न धन-दौलत और न ही रूप-सौन्दर्य स्थायी है :—

जाच लागी फागली, गोंठी भौरी दुआनी।
सदा नी रौहंदा शाउण भादरू, सदा नी रौहंदी जुआनी।

इस प्रकार अनेक लामण-गीतों में शान्त रस की भाव-व्यंजना मिलती है। भाग्य की भावना लिए हुए लामणों में शान्त रस सव से अधिक व्यापक है। ऐसे लामण-गीतों मे आध्यत्मिकता के लक्षण स्पष्ट होते हैं।

भाषा सौष्ठव

मनुष्य की आत्म-अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन भाषा है, और प्रत्येक साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए भी भाषा ही माध्यम हुआ करती है। सामान्य वोल-चाल में व्यक्ति अपना अभिप्राय अपनी बोली द्वारा दूसरों को प्रकट करता है, तथा साहित्यिक क्षेत्र में वही बोली विस्तृत आयाम ग्रहण करके भाषा के रूप में माध्यम वनती है। भाषा एक होते हुए भी इस की संप्रेषणता भिन्न होती है। भाषा की संप्रेषणता और प्रभावशीलता किसी व्यक्ति-विशेष या जाति-विशेष के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। यही कारण है कि शिष्ट साहित्य के साहित्यकार या शिष्ट काव्य के कवि की भाषा लोक-साहित्य के स्रष्टा या लोक-गायक की भाषा से भिन्न होती है। यह बात हमें लामण-गीतों की भाषा के बारे में विशेष रूप से ध्यान में रखनी होगी। लोक-काव्य की भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक होती है, जवकि शिष्ट काव्य के कवि की भाषा प्रायः क्लिष्ट और जटिल होती है। कवि के मन में काव्य-शिल्प की अवधारणा, चमत्कार शैली की उत्कण्ठा उस की भाषा को प्रायः शब्दों का जाल बना देती है। गहरे चिन्तन से प्रेरित और आरोपित शब्दावली चमत्कार भले ले आए परन्तु वह उतनी प्रभावशाली

नहीं हो सकती। वह मस्तिष्क का भोजन है। उसका सम्बन्ध बुद्धि से अधिक मन से कम होता है। बुद्धि को भले वह जीत ले, मन को नहीं जीत सकती। इसके विपरीत लोक-कवि या गायक की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक और सरस होती है। सहजता और स्वाभाविकता उस के मुख्य गुण हैं। उस के साहित्य की ठीक वही भाषा है जो उसके जीवन की सामान्य बोल-चाल की भाषा है। दोनों में कोई अन्तर नहीं होता। उस के साहित्य की भाषा को समझने के लिए कवि की भाषा की तरह दिमाग पर ज़ोर नहीं डालना पड़ता। न शब्दकोष की छान-बीन करनी पड़ती है। लोक-कवि शिष्ट काव्य के कवि की तरह कभी भी कल्पना की उड़ान में आकाश से तारे तोड़ कर नहीं लाता। न ही आकाश को पृथ्वी पर लाने की बात करता है। वह वही बात करता है जो स्वाभाविक है, बुद्धि गम्य है तथा विश्वसनीय है :—

साजा श्राऊ शौइरी, मिलण हौला तौधी।
तू आणी शोता रा ल्हौसर, हाऊं श्राणनू बाल्ह री बोदी।

'सैरी संक्रांति का मेला आ रहा है प्रिया, उसी दिन मिलन होगा। तू पर्वत-शिखा से ल्होसर फूल लाना, मैं मैदानों से नर्गिस (बोदी) लाऊंगा।' ल्होसर फूल पर्वत की दुर्गम शिखरों पर मिलता है, और नर्गिस दूर मैदानों में। परन्तु दोनों प्राप्य हैं, उपलब्ध हैं, लाए जाते हैं। केवल कष्ट उठाना पड़ता है। यही सहजता, सरलता और स्वाभाविकता लोक-गीतों की विशिष्टता है जो लामण-गीतों में शतशः उपयुक्त है।

लामण-गीत यद्यपि हिमालय के दामन में बहुत बड़े क्षेत्र में गाए जाते हैं, परन्तु इस का मुख्य क्षेत्र सिरमौर, साथ लगता उत्तर प्रदेश का रवाई, जौनपुर जौनसर बाबर तथा हिमाचल के सोलन, शिमला और कुल्लू जिले हैं। भाषायी दृष्टि से यह क्षेत्र पहाड़ी भाषा की भीतरी शाखा से सम्बन्धित है। इस भाषा की रागात्मकता और मधुरता लामण-गीतों के लिए अत्यन्त अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं। विस्तृत वर्णन और लम्बे व्याख्यानों के लिए यह भाषा बड़ी ही उपयुक्त है। पंजाबी की तरह चुस्त-वाक्यावली तथा द्रुतगामी शैली इस भाषा की विशिष्टता नहीं है। पंजाबी की तरह शब्दों की कड़कड़ाहट भीतरी पहाड़ी भाषा की शैली नहीं है। इस के विपरीत इस भाषा की शैली मन्द-गामिनी सरिता के समान है। शिमला जिला का व्यक्ति जब हिन्दी बोलता है तो हिन्दी में भी उपरि-महासुई का धीमा प्रवाह स्पष्ट बना रहता है। शब्दों को खेंच कर बोलने की यहां प्रथा है। भाषा की यही धीमी गति लामण की विलम्बित-लय के लिए अत्यन्त अनुकूल शैली है। विलम्बित उच्चारण से भाषा में गेयता के लक्षण उभरते हैं, और यहां की साधारण बोल-चाल भी गीतमय

लगती है। विलम्बित वर्णनात्मकता के साथ स्वाभाविक गेयता लामण-गीतों की शैली के लिए अत्यन्त अनुकूल भाषा प्रदान करती है। भीतरी पहाड़ी का यह मन्दगामी परन्तु धारावाहक प्रवाह भाषा में माधुर्य लाता है। मूल रूप में लामण-गीत इस भाषा की विलम्बित शैली और रागात्मक वृत्ति की उपज हैं। यह क्षेत्र किन्नर, किरात और खशों की जन्म-भूमि रही है। ये लोग गीत और राग के प्रेमी थे। भारतीय साहित्य इस बात का साक्षी है। तभी इन्हें किन्नर-कण्ठीय कहा जाता है।

लघुत्व में प्रियत्व

लामण-गीतों की भाषा की दूसरी विशेषता इस की प्रियत्व और लघुत्व शब्दावली है। गीत की मधुरता का रहस्य भाषा की कोमलतम अभिव्यक्ति पर निहित है। और लामण-गीतों में शब्दों को कोमल बनाना एक प्रमुख विशिष्टता है। शब्दों को कोमल बनाने का सबसे अधिक प्रचलित रूप लघुता-वाचक प्रत्ययों का प्रयोग है। और लघुता में प्रियत्व निहित है। जो लघु है वह कोमल है और इसलिए प्रिय भी है। भीतरी पहाड़ी भाषा में शब्दों में लघुता और गुरूता वाचक प्रत्ययों के प्रयोग से भाव या आकार को विस्तार या संकोच देने की बहुप्रयुक्त प्रथा है।‡ यथा खौल ∠सं० खाल से खौलड़ा 'बड़ी खाल', खौलड़ी 'छोटी और बारीक खाल', खौलडू 'छोटी सी खाल'। लामण-गीतों में लघुता-वाचक शब्दों का बाहुल्य है। इनका लघुता वाचक प्रत्यय टू-टी, ड़ू-ड़ी या णू-णी है। लघुता के लिए टवर्गीय प्रत्ययों का प्रयोग और फिर उसे प्रियत्व का भाव दर्शाने से कुछ विद्वानों को आश्चर्य होगा और आपत्ति भी। कारण! टवर्ग को प्रायः कर्ण-कटु वर्ण माना जाता है। परन्तु यह उन भाषाओं के लिए है जहां टवर्ग वर्णों का अभाव है। पहाड़ी में टवर्ग वर्ण सरसता के आभूषण हैं। विशेषतः शब्दों के अन्त में आने वाला टवर्गीय वर्ण वाद्य-यन्त्र के मधुर ताल की तरह है। हारमोनियम के सुर बेजान बने रहते हैं, जब तक तबले की ताल साथ नहीं देती। तबले की टनटनाहट सीधे आपके हृदय-छोर को छूती है। सुर और ताल के तादात्मय के महत्व को न केवल संगीतज्ञ जानते हैं, अपितु गीत और संगीत के प्रेमी—साधारण व्यक्ति—इसके मधुर प्रभाव को भली प्रकार समझते हैं। यदि टवर्ग सचमुच कर्ण-कटु होता तो संगीत में तबले का महत्त्व न होता। तबले पर गिरती हर उंगली 'टन' की आवाज निकालती है। बल्कि उंगली की हल्की मार को जोर देने के लिए तबलची उंगली में कृत्रिम उपकरण भी चढ़ाता है। अतः टवर्ग को कर्ण कटु वर्ण मानने वाले विद्वानों को

‡देखें : मौलूराम ठाकुर : पहाड़ी भाषा—कुलुई के विशेष संदर्भ में, पृष्ठ 87, 222।

इस का उत्तर ढूंढ़ना पड़ेगा। खैर यहां पहाड़ी के लामण-गीतों में लघुता और प्रेमत्व भाव दर्शाने के लिए प्रयुक्त प्रत्ययों की व्याख्या है। पहाड़ी लामण प्रणय गीत हैं, यह पहले कहा गया है। प्रणय गीत होने के नाते इनकी शब्दावली प्रेम-भाव से युक्त होनी अनिवार्य है। इसके लिए लामण के गायक न केवल मूल प्रेम-युक्त शब्द प्रयुक्त करते हैं, वरन् सामान्य शब्द को भी लघुता रूप देकर प्रेम-सम्पन्न बना देते हैं। लघुता में कोमलता का भाव छिपा है, और जो कोमल है वह प्रिय है। बच्चे के प्रति प्रेम की भावना के पीछे उस की लघुता, सुकुमारता और कोमलता की अनुभूति का समावेश है। यह बात पहाड़ी-भाषी के दैनिक व्यवहार से स्पष्ट होती है। वह कान की कोमलता या सुन्दरता दर्शाना चाहता है तो कान को 'कानड़ू' या 'कोनड़ू' कहता है, मुंह को 'मुंहड़ू' दान्त को 'दन्दड़ू-दान्दड़ू-दोंदड़ू', फूल को फूलणू या फूलटू आदि। लामण-गीतों में लघुता प्रक्रिया के इस प्रयोग का महत्व और भी अधिक विशिष्ट है। लोक गायक इसका प्रयोग दूसरी दृष्टि से भी करता है जो छन्द-विधान से सम्बन्ध रखता है। वर्णों या मात्राओं की कमी को पूरा करने के लिए यह सर्वाधिक प्रयुक्त साधन है—

1. फूली कौरला फूलटू, डाली फूलोला कूजा।
जौथी लागा मूईएं दिलड़ू, ना बी चांईदा दूजा।

2. भौर फूलला फूलणू, बूटी फूलला पाला।
ज्हारा-ज्हारा रे हौखड़ू तेरे, लाखे री दोंदे री माला।

उपर्युक्त दो दोहों में **फूलटू** 'फूल', **दिलड़ू** 'दिल', **फूलणू** 'फूल', **हौखड़ू** 'आंखें' ∠ सं० अक्षि' शब्दों में 'टू', 'ड़ू', 'णू' के प्रयोग ने न केवल फूल, दिल, और आंख को कोमलता और प्रियता प्रदान की है, वरन् छन्द के तोल को भी सुरक्षित रखा है। इन शब्दों से 'टू', 'ड़ू' को हटा दीजिए गीत का वज़न टूट जाएगा। समान-तोल समाप्त हो जाएगा।

अट्टे घड़े आटड़ू, दान्दड़ू घड़े सुनारे।
कुणी घड़ी तेरी हाखटी, जीवा जलाउंदी म्हारे।

इस दोहे से आप लघुता-वाचक प्रत्यय हटा दीजिए और फिर लामण गा कर देखिए, कुछ का कुछ हो जाएगा। स्पष्ट है कि भीतरी पहाड़ी भाषा में शब्दों को कोमल और प्रिय बनाने की आम प्रथा है, और यह प्रथा नियमानुकूल है तथा लामण-गीतों में टी-टू, ड़ी-ड़ू, णी-णू अन्त वाले शब्द न केवल कोमलता और प्रियता के परिचायक हैं, वरन् वे कर्ण-माधुर्य भी प्रदान करते हैं और वर्ण अथवा मात्रा की साम्यता को भी पूरा करते हैं।

शब्द–चयन

पहाड़ी भाषा का शब्द भण्डार बड़ा विपुल है। इस का मुख्य कारण यह है कि आदि-काल से यह ऋषि-मुनियों और देवताओं की भूमि रही है, और यहां की जनता धर्मशील और सत्यनिष्ठ रही है। ऋषि-आश्रमों और देव-स्थानों से धर्म-उपदेश, व्याख्यान और प्रचार अवश्य प्रसारित होते रहे हैं। इस प्रकार संस्कृत का एक समृद्ध शब्द-समूह इसे विरासत में मिला है, जिसे पहाड़ी भाषा ने अपनी प्रकृति के अनुसार तत्सम् और तद्भव रूप में सुरक्षित रखा है। शौरसेनी-प्राकृत और शौरसेनी-अपभ्रंश के माध्यम से प्राप्त इस शब्दावली का प्रयोग लामण-गीतों में हुआ है। इसके अतिरिक्त यह भू-खण्ड कोल, किन्नर, किरात, खश आदि-जातियों की जन्म-भूमि रही है। ये जातियां न केवल इस क्षेत्र के सांस्कृतिक और रीति-रिवाजों सम्बन्धी विशिष्ठ प्रथाओं में अपना प्रभाव आज तक जीवित रखे रखी है, वरन् पहाड़ी भाषा के शब्द-भण्डार में ऐसे शब्दों का आधिक्य जिन का कोई सम्बन्ध संस्कृत से नहीं जुड़ता, इन्हीं जातियों की सम्पदा है। इन जातियों की मूल भाषा क्या थी ? यह अभी शोध का विषय है। परन्तु संस्कृत-तत्सम-तद्भव इतर शब्दों के भारी प्रयोग से इन्कार नहीं किया जा सकता। 'हार' गीतों में (जैसे खशिया कदारो री हार आदि) इन शब्दों की प्रधानता को देखा जा सकता है।

स्पष्ट है कि लामण-गीत ऐसे ही शब्दों को अपनाए हुए हैं। इन लामणों में अनेक संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलता है, उदाहरणार्थ—मन, अन्न, तपस्या, लोभ, मोह, विपदा, विधाता, ज्ञान, रोग, मूर्ति, क्रोध, गुण, माला, कर्म, माया, गीत, घोर, भाग, पूजा, पाप, धार, मूर्ख, खीर, रंग, सुख, चन्द्र, संग, रेखा, राग, देश, दूत, ऋण, इन्द्र, आशा, काया, कपट, घोर, जाल, तारा, त्राण, तोल, तीर्थ, ध्यान, वचन, आदि। लामण-गीतों में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग लामण की प्राचीन प्रथा का परिचायक है। इन्हीं गीतों में प्रयुक्त संस्कृत शब्द सामान्य बोल-चाल के शब्द बन गए हैं। संस्कृत के यह तत्सम शब्द इन लामण-गीतों में ऐसे घुल-मिल गए हैं कि इस भाषा के अपने लगते हैं, बाहर से थोपे हुए नहीं। संस्कार गीतों में तत्सम शब्दों का आना स्वाभाविक है, परन्तु प्रणय गीतों में इन का प्रयोग गीत के प्राचीन काल से आते रहने की धारणा को पुष्ट करता है।

संस्कृत से विरासत में आए शब्द भण्डार में बहुलता उन शब्दों की है जिन्हें अर्ध-तत्सम और तद्भव रूप कहा जाता है। संस्कृत के मूल शब्दों को पहाड़ी जनता ने अपनी भाषा की प्रकृति और सुविधा के अनुसार इस तरह से

ढाला है कि वे ध्वनि और व्याकरण के आधार पर इस भाषा के मूल शब्द लगते हैं। संस्कृत शब्दों का मूल रूप साधारण से असाधारण सीमा तक परिवर्तित हुआ है। संस्कृत के कठिन से कठिन शब्द भी नियमित रूप से परिवर्तित हो कर ग्रहण किए गए हैं। साधारण परिवर्तन इस प्रकार देखा जा सकता है:—
साजन ∠सज्जन, पांछी ∠पक्षि, नौयण ∠नयन, भाग ∠भाग्य, नीमला ∠निर्मल नाती ∠नप्तृ, राची ∠रात्रि, दान्द ∠दन्त, भौंरा ∠भ्रमर, सुपना ∠स्वप्न, शवाल-शोवाल ∠शैवाल, रूखा ∠रूक्ष, हाखी ∠अक्षि, वौर्ष ∠वर्ष, घोर ∠गृह, हीरख ∠ईर्ष्या, हिऊं ∠हिम, हिऊंद ∠हेमन्त, सौर्ग ∠स्वर्ग आदि। परन्तु अधिकता उन शब्दों की है जिन का सम्वन्ध संस्कृत शब्दों से है तो निश्चित परन्तु आसानी से तुरन्त प्रकट नहीं होता; अर्थात् साधारणतया उनका सम्वन्ध कुछ कठिनता से जुड़ता है। इस का अर्थ यह नहीं कि उन का सम्वन्ध संस्कृत शब्दों से संदिग्ध है, वरन् यह कि समझने के लिए सम्वन्ध जोड़ना पड़ता है, यथा :—
शोख ∠शुष्क, वियाले-वियाली ∠विकाल, चीश ∠तृष्णा, गौइण-गेइण ∠गगन, बीजी-बीझा ∠वर्जित, जोथ ∠ज्योत्स्ना, जोइण ∠ज्योत्स्ना, हिया ∠हृदय, दिहाड़ा ∠दिवस, हीज़ ∠ह्यस, शूई ∠श्वस, पौरशी ∠परश्वस, माऊं ∠माहूं ∠मधुक, सेंइसा ∠साइसा ∠संशय, शांगल ∠शृंखला, नाड़ी ∠स्नायु, निघा ∠स्निग्ध, दिहायण ∠धियाणा, ∠दुहितृ, दैइता ∠दैत्य, माण्डू ∠मानव, पाशड़-पाशड़ी ∠पार्श्व, अलणा-औलणा ∠अलवणित, पाउणा ∠पाहुणा ∠प्राघुण आदि।
ये कुछ एक उदाहरण के लिए शब्द दिए गए हैं, यद्यपि तद्भव शब्दों का अनुपात बहुत अधिक है। सारे क्षेत्र में तद्भव रूप एक समान या एक ही नियम से नहीं बने हैं। स्वरों के लघु-गुरु भेद के अतिरिक्त इन क्षेत्रों में 'क्ष' 'त्र' तथा 'ष' के रूपान्तरण में विशेष भेद दिखाई देता है। 'क्ष' कहीं 'ख' में और कहीं 'छ' में बदलता है, जैसे सिरमौर और महासु क्षेत्र में सं० 'अक्षि' शब्द 'आखी या हाखी' (लघुतावाचक आखटी या हाखटी) और कुलुई में 'हौछी' में बदला है। परन्तु 'क्ष' के बदलने में स्थान-भेद अधिक निर्णायक नहीं है। एक ही क्षेत्र में भी 'क्ष' कभी 'ख' में और कभी 'छ' में परिवर्तित होता है, जैसे कुलुई में सं० क्षेम से खेऊ और क्षेत्र से छेत रूप बनते हैं। यही स्थिति 'ष' की है। यह कहीं 'ख' में और कहीं 'श' या 'छ' में बदलता है। यहां भी क्षेत्र-विशेष के आधार पर ऐसा परिवर्तन नहीं है। लामण-गीतों में 'मनुष्य' शब्द 'माणश' 'माणछ और 'मनुख' रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह 'त्र' अक्षर भी कहीं 'त' और कहीं 'च' में बदलता है। सिरमौर और महासुई क्षेत्र में यह प्राय: 'च' में ही बदला है, यथा—'क्षेत्र' से 'खेच, 'रात्रि' से 'राची', सं० 'त्रि' से 'चोन' (हिन्दी तीन) आदि। कुलुई में यह शब्द क्रमश: छेत, रात, तराई प्रचलित हैं। शेष तद्भव रूप समान नियम से बने प्रतीत होते हैं।

परन्तु इस क्षेत्र में वहुतायत उन शब्दों की है जिनका स्रोत संस्कृत से सिद्ध नहीं होता। भाषा-वैज्ञानिक इन शब्दों को 'देशी' के अन्तर्गत रखते हैं। इस क्षेत्र के देशी शब्दों में किराती, कोल और खश के शब्द अधिक मिलते हैं। लामण-गीतों में प्रयुक्त कुछ शब्द इस प्रकार हैं– बांठण 'सुन्दर-स्त्री', डूंगा 'गहरा', टुल्हणा 'ऊंघना', लीरे या ल्हीरे 'चीथड़े', टल्हे या टौल्हे 'कपड़े', हण्डणा 'चलना', शेल्ह या शेल 'भांग के छिलके जिनको रस्सी वनती है', तोपणा 'तलाश करना', छीलणा या छोलणा 'विलोना', रिन्हणा 'पकाना', तीक 'निशान, सामने', ठिंड 'जवान मर्द', या 'नौकर', झीश 'प्रातः', आल 'गहरा पानी', पधरा 'समतल' शिल्हा 'छायादार', सेर 'फसल से भरा खेतों का समूह', धाचणा 'पालना', ऊंच 'बहाना', छ़ेका 'शीघ्र', बेटड़ी 'स्त्री', खाख 'मुंह, गाल', चोपड़ 'मक्खन', नौंणी 'मक्खन', माड़ा 'खराव', चरेड़ा 'पक्षी का वच्चा', हुणा 'जिसका ओठ कटा हो', टेंडा 'आंख', टापरी 'खेतों में वनी छोटी झोंपड़ी', टौब्बर-टब्बर 'कुटुम्ब के सदस्य' फाड़ी 'अन्तिम' आदि। देशी शब्दों में विशेषता उन शब्दों की है जो अनुकरणात्मक या ध्वन्यात्मक है। या जहां शब्द की पुनरुक्ति होती है। लामण-गीतों में ऐसे शब्दों से न केवल भावाभिव्यक्ति हुई है, वरन् इन शब्दों ने लामण गीतों की रागात्मकता को भी बढ़ावा दिया है। निरर्थक तुक के रूप में ऐसे अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। निरर्थक से यहां अभिप्रायः लामण की दूसरी पंक्ति से प्रथम तुक सम्बन्धी पंक्ति का असम्बद्ध होना है। अपने आप में ऐसे अनुकरणात्मक शब्द प्रायः सार्थक होते हैं। ऐसे शब्दों से तुक के साथ साथ संगीतात्मक माधुर्य में भी वृद्धि होती है, यथा तेरी ताईं नाणा **जोणी-लागली तोणी**, बीझे-सौर्गे **उड़-लागे-गरड़**, तेरी तांइए सोंगीया **उशा लागली निशी**, आरश देखो पारशा, तेरे कारू संगीय, **रिशी शुणेई खिशी, रुग-बुगड़** घौठ, ढुंड-मुंडला माशा, तिरमिरी रे काशे आदि। इन शब्दों की यह विशेषता है कि लामण-गीतों में इनका प्रयोग इस ढंग से होता है कि ये विम्ब-योजना के महत्व को द्विगणित कर देते हैं।

लामण की प्रथा और शैली वहुत प्राचीन है। गीत रूप में इस के मुक्तक पीढ़ी दर पीढ़ी आगे निकलते जाते हैं। इसी लम्बी यात्रा में कुछ पुराने लामण भूल भी गए हों परन्तु इनके भण्डार की सर्वदा प्रतिपूर्ति होती रहती है। समाज के गीतकार नये नये लामण की रचना करके इसके कोष को समृद्ध करते जाते हैं। लामण-गीतों की शब्दावली इस वात की पुष्टि करती है। तपस्या, बिपदा, क्रोध, सर्प, बुद्धि आदि संस्कृत तत्सम शब्द आम बोल-चाल में सुनने में नहीं आते, परन्तु लामण गीतों में इनका शुद्ध प्रयोग इनकी प्राचीन सत्ता को पुष्ट करता है। परन्तु साथ ही साथ इनकी गिनती नये लामणों से बढ़ती जा रही है,

यह बात इनमें प्रयुक्त अरवी, फारसी और अंग्रेजी शब्दों से सिद्ध हो जाती है—

मोंझ़ स्कूला फेरं फिरदी शाढ़े री बूटी।
ज़ेबे आई झ़ूरी री सोठणी, हौथा-न कलम छूटी।

"बीच स्कूल की चारों ओर खुरमानी के वृक्ष हैं। जब प्रेमिका की याद आती है तो कलम छूट जाती है"। यहां वर्तमान स्कूल का वातावरण प्रस्तुत है। विदेशी शब्दों में भी लामण-गीतों में स्थानीय भाषायी परिवर्तन आया है। पहाड़ी भाषा ने कठिन विदेशी शब्दों को अपनी प्रकृति के अनुसार ढाला है। अतः जहां एक ओर कलम, मदरशा, चुगली, नौकरी, मरज़ी, राजी, वज़न, जादु, पेच सौदा, यार, बराबर, कंलगी, ज़माना, चाकू, गोभी, चाबी, वटन, मेज़, टिकट, कोट, मोटर आदि शब्द शुद्ध रूप में प्रचलित हैं, वहां अन्य अनेक विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन आया है, यथा—सान 'एहसान', सुआल 'सवाल', दुआइत 'दवात', तमाकू 'तम्वाकू', नशाणी 'निशानी', केइदी 'कैदी', रमाल 'रुमाल', कागद 'कागज़', मदरशा 'मदरसा', छुटी 'छुट्टी', ज़ेउर 'ज़ेवर', तसील 'तहसील', मुणशी 'मुनशी', दरोगा, फाइदा, वज़ार, सरगीट 'सगरीट' आदि। इन सभी भाषाओं के शब्दों का पहाड़ी भाषा में ऐसा अनूठा मेल हुआ है कि इसकी अपनी अलग प्रकृति निखरी है। इन भाषाओं के शब्दों का अनुपात विभिन्न वोलियों में विभिन्न है। संस्कृत शब्दों के मूल रूप में भारी परिवर्तन के कारण उनका संस्कृत रूप समझना निस्सन्देह कठिन है, अन्यथा पहाड़ी में संस्कृत-तद्भव शब्द सर्वाधिक हैं। इन में हिन्दी के सामान्य शब्द भी शामिल हैं। दूसरा स्थान देशी शब्दों का तथा तीसरा स्थान विदेशी शब्दों का है। कुछ उदाहरण व्याख्या के रूप में प्रस्तुत करना उचित रहेगा—

ठींडे री टोपी, तोड़के शी लाए।
बांठणो रे नौयणो, माऊए शी खाए।

ठिण्डे री 'सुन्दर युवक (जवान मर्द देशी शब्द) की' टोपी 'हिं० टोपी', तोड़के 'हिं० तड़का' (प्रभात नहीं, वरन् सब्जी में तड़का, मूल रूप में यह देशी शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति अनुकरणात्मक है अर्थात् 'आंच लगने पर जिससे तड़-तड़ की आवाज़ आती है। इसका दूसरा पहाड़ी में प्रयुक्त शब्द 'छामका' है।) शी 'जैसा', ('शी' शब्द 'जिशी' का संक्षिप्त रूप है। 'जिशा' शब्द संस्कृत 'यादृशम् से व्युत्पन्न हुआ है—यादृशम् 7जादिशं 7जइशा 7जिशा)। लाए 'लगा है'। बांठणो रे 'सुन्दर युवती के (देशी शब्द)', नौयणो 'सं० नयन', माऊए 'सं० मधुक, मधु-मक्खी ने', शी 'जैसा', खाए 'खाया है'। इसी तरह :—

नाईं कौरना गरबा, नाईं कौरना गमानो।
इशा चूटा गरबा, जिशा शिल्ही सेरी रो धानो।

नाईं 'नहीं', कौरना 'करना', गरबा 'सं० गर्व', नाईं 'नहीं', गमाना 'फारसी शब्द गुमान', चूटा 'टूटता है, सं० त्रुट्', जिशा 'जैसा', सेरी 'दे० फसलाधीन खेतों का समूह', धानो 'धान अन्न' । एवं :—

ठाण्डे पाणी रे डिभणू, ज़ोड़े पीऊ मनाले।
एकी-बे लिखू कलम-दुग्राते, एकी-बे छोड़ी रे डाले।

ठाण्डे पाणी रे 'ठण्डे पानी के', डिभणू 'जमीन में पानी का छोटा गढ़ा', ज़ोड़े 'जोड़े', पीऊ 'पिया', मनाले 'मनाल पक्षी ने, सं० मृणाल', एकी-बे 'एक को' लिखू 'लिखा', कलम-दुआते (अरबी शब्द) 'कलम-दवात से', छोड़ी रे 'दे० लकड़ी के', डाले 'डाल से' ।

लोक-गीतों की भाषा प्रायः साधारण बोल-चाल की भाषा से अधिक भिन्न नहीं होती । इन में अभिव्यक्ति प्रायः गद्यात्मक ही रहती है । सामान्यतः लामण-गीतों की भाषा भी गद्यात्मक शैली ही लिए हुए है । परन्तु, जैसा कि पहले लिखा गया है लामण-गीतों में काव्य की सी गुरुता रहती है । लामण-गीतों की काव्यात्मक शैली के पूर्वोक्त गुणों में इन की भाषा सम्बन्धी विशेषता भी जोड़ी जा सकती है । इन गीतों में शब्दों का चयन और उन का प्रयोग बड़ा चमत्कार-पूर्ण है । जिस संदर्भ में कोई शब्द विशेष प्रयुक्त हुआ है उस का चित्रण उस शब्द ने बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । यही कारण हैं कि लामण-गीतों की भाषा अन्य लोक-गीतों की भाषा से अधिक काव्यात्मक अभिव्यक्ति लिए होती है । इन में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ सर्वदा केवल शब्द-कोश के अर्थ तक सीमित नहीं होता वरन् इन का बौद्धिक व्यापार बड़ी विस्तृत शब्द-शक्ति रखता है । उदाहरण के लिए पिछले पृष्ठ पर उद्धृत प्रथम लामण की ओर ध्यान अकर्षित है । इसका साधारण शब्दों में अर्थ है **"युवक की टोपी ने तड़का सा लगा दिया है; युवती की आंखों ने मधु-मक्खी की तरह काट खाया है ।"** परन्तु वास्तव में इस लामण का अर्थ यहां तक सीमित नहीं है । इस में 'तड़का' और 'मधु-मक्खी का डंक' लाक्षणिक अर्थ लिए हुए हैं । इस शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त लामण का असल अर्थ यह है कि युवक की टोपी ने ऐसा सौंदर्य निखारा है कि देखते ही उल्लास और उमंग भड़क उठते हैं । और उधर सुन्दर युवती के नयनों का सौंदर्य इतना आकर्षक है कि नायक को उस की याद मधु-मक्खी के डंक की तरह चोट करती है ।

इस प्रकार अनेक लामणों का अर्थ शब्द-कोश के अर्थों की तरह निर्जीव नहीं है । उनका अर्थ बड़ा गम्भीर होता है । एक उदाहरण देखिए :—

झूठे माणहु रे वचना, सिरी हुआ रामा री रेखा ।
बिना बुद्धि रा माणछ, चारा कुनोउटू देखा ।

इस दोहे का शाब्दिक अर्थ है—'झूठे मानव के वचन जैसे श्री राम की रेखा हुई। विना वुद्धि का मनुष्य चारों किनारे देखता है।' परन्तु यह अर्थ इस लामण के मूल भाव से संगत नहीं होता। मूल रूप में इस का भाव है कि 'श्री राम की रेखा (लोक मानस के लिए लक्ष्मण-रेखा राम रेखा ही है) भी झूठे आदमी को अपने वचन का पालन करने के लिए विवश नही कर सकती। वह झूठ वोलेगा ही, ऐसे ही जैसे विना वुद्धि का व्यक्ति अर्थात् मूर्ख चारों दिशाएं स्पष्ट देखता हुआ भी भूल ही करता है, मूर्खता कर बैठता है।' इस से स्पष्ट होता है कि लामणों की भाषा काव्यात्मक अनुभूति से भरी है। इसी अनुभूति के फल-स्वरूप ही लामणों की भाषा में काव्य-सौष्ठव प्राप्त होता है। परन्तु इस सौष्ठव को वही समझ सकता है, जिसमें लोक गायक की अनुभूति की तह तक पहुंचने का सामर्थ्य हो। जो गहराई में नहीं जा सकता उसके लिए लोक-मानस की उक्ति अटपटी वनी रहेगी, वह मूल भाव का रसास्वादन नहीं ले सकता। यही नहीं लामण के संदर्भ के वातावरण की समझ होना भी अनिवार्य है। किस संदर्भ में और किस वातावरण में कोई लामण-विशेष गाया गया है उसका ज्ञान हुए विना आप लामण के भाव का लुतफ नहीं उठा सकते। एक उदाहरण और लीजिए :—

छींटे रे थीपुआ, जलाहू ऊना री लोईए।
सर्प ढौकणा–बे नी संख्या, सिंह ढौकदी पोईए।

'अरे छींट के थीपुआ (सिर पर वांधने का रूमाल) मेमने के ऊन के पट्टू! सर्प पकड़ने की हिम्मत नहीं, सिंह पकड़ने के पीछे पड़ गई है क्या?' जव तक गम्भीरता से देख कर इस लामण के सन्दर्भ और परिवेश को न समझा जाए, तब तक ऊपर का अर्थ लामण के सौंदर्य को व्यक्त नहीं कर सकता। संकेत उस युवती की ओर है जिस ने सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर किसी विशेष कठिन लक्ष्य को आंकने की ठानी है। यह लक्ष्य सिंह को पकड़ने जैसा कठिन है और जिसने सांप ही न पकड़ा हो वह शेर क्या पकड़ सकता है।' इतना वड़ा व्यंग्य शिष्ट काव्य में भी कम ही प्राप्त हो सकता है। स्पष्ट है कि इन लामणों में वाच्यार्थ से अधिक महत्वपूर्ण इन का लक्षणार्थ औप व्यंजनार्थ है। परन्तु इस महत्व को वही जान सकता है जो यहां के संस्कारों और लामण-गायकों की अनुभूतियों से परिचित हैं। पहाड़ी की साधारण वोल-चाल में साजण का अर्थ सं० सज्जन है। परन्तु इन लामणों में यह शब्द 'प्रियतम' व्यंजनार्थ में ही प्रयुक्त हुआ है, यथा—जिन्हां रे रूशे साजण, तिन्हां रे जीवणा किशे; साजण रौहे रूशी, कौसी वेइद्व भेजू; साजणें हाथड़ू जेणे गलावा रे फूला, आदि। वास्तव में लामण-गीतों की भाषा अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों की दृष्टि से सभी प्रकार के लोक-

गीतों में सबसे अधिक महत्व रखती है। शब्द-कोषीय अर्थ इन गीतों में अधिक विशिष्ट रूप में अभिव्यक्त होता है।

इन लामणों में अत्यधिक प्रयुक्त वाक्यांश 'फूल फुलला फुलटू' केवल साधारण फूल के खिलने का द्योतक नहीं है। वातावरण के अनुसार उसमें प्राकृतिक सुन्दरता की छटा, भरपूर जवानी का नशा, मनमोहक सौंदर्य का उल्लास आशाओं की पूर्ति की सम्भाव्यता और प्रफुल्लित हृदय की आभा भरी पड़ी है।

शान्ताश्रम, शिमला
मार्च, 1976.

मौलू राम ठाकुर

दोहे-लामण

कुल्लू की देव-धरा को प्रकृति का अभूतपूर्व वरदान प्राप्त है। रोहतांग, देऊ टिवा, वारालाचा, वश्लेऊ, जलोड़ी, कण्ढी, भवू, सरी आदि जोतों की ऊंची पर्वत-श्रृंखलाएं जहां आकाश से वातें करने लगती हैं, वहां नीचे इनकी गहरी घाटियां पाताल को छूने लगती हैं। व्यास, सरवरी, पार्वती, तीर्थान, सैंज आदि नदियां न केवल आदिकाल से कुल्लू की शोभा बढ़ाती आई हैं वरन् अपनी वादियों की लहलहाती खेतियों को अन्न-धन से सम्पन्न करती रही हैं। मणिकरण, वशिष्ठ और कलाथ के गर्म पानी के चश्मे तथा खीर-गंगा, सारी आदि सरोवर यात्रियों को वह अद्भुत दृश्य प्रदान करते हैं जो सम्भवतः कहीं और स्थान पर मिलना कठिन हो। वास्तव में कुल्लु की धरती प्रकृति की क्रीड़ा-स्थली है। देवदारू, रई, तोस, काइल से ढके वन, मदमाती सर-सरिताओं से सिंचित घाटियां, धान, गेहूं, जौ, कोदरा, काठू, भरेसा, चीणी, कांगणी, सरयारा, घांगड़ी आदि फसलों से लहलहाते खेत, सेव, आड़ू, नाशपाती, खुरमानी, पलम, जापानी फल, चरी से सुशोभित बाग, अखरोट, खनोर, पाला, असाढ़ियां, आलुबुखारा, जामू (जामुन), वरीड़ी के जंगली फलों से लदे वृक्ष कुल्लू की भूमि को वह सौंदर्य वरदान करते हैं, जो न केवल यहां के निवासियों को वरन् देश-विदेश के यात्रियों के हृदय को मुग्ध किए देता है। वर्ष की हर ऋतु में यह नवीन और अनोखा नज़ारा प्रदान करता है। शरत् ऋतु में सारी धरती वर्फ की श्वेत तहों में ढक जाती है। वसन्त के मौसम में जहां निचला क्षेत्र नये घास की हरियाली लिए होता है वहीं ऊंची पर्वत-श्रृंखलाएं अभी भी हिमाच्छादित सैलानियों को आमंत्रण देती हैं। गर्मियों में जब मैदानी प्रदेश निवासी घोर गर्मी के कारण हांफते, तिलमिलाते फिरते हैं, कुल्लू की घाटी उन्हें शान्त और सुहावना वातावरण से आकर्षित करती है। वरास, गुल-सोसन, जंगली डलिया, दुधली, भावरी, ल्होसर, वोदी (नरगिस) आदि फूलों से लदी धरती आंखों को तरावत तथा मन को शांति और मोह प्रदान करती है। तभी इस मदमाते वातावरण से मुग्ध दिल गा उठता है :—

फूल फुली भावरी, मौर फूली गलदोदी।
तू आणी जोता रा ल्होसर, हाऊं बाल्हा री बोदी।

'आहा ! चारों ओर भावरी तथा गुल-दुधिया आदि खिले हुए फूल मन को मोहित कर रहे हैं। हे प्रियतम ! तुम पर्वत शिखा से ल्होसर फूल ले आना मैं मैदानी क्षेत्र से बोदी (नरगिस) लाऊंगी।'

ऐसे सुहावने वातावरण में रहने वाला मानव भावुक, संवेदनशील, उल्लास-पूर्ण और हर्षोन्मादक क्यों न हो वह प्रकृति का पुजारी है। वह प्रकृति के मोहक दृश्य के साथ झूम तो उठेगा ही और साथ ही हंसती, खेलती, मदमाती प्रकृति की लय में लय मिलाता हुआ गुनगुनाता, नाचता और गाता भी फिरता है। उसका हृदय गद-गद हुआ जाता है। स्पष्ट है कि जिस प्रकार कुल्लू वादी अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विश्व प्रसिद्ध है, उसी प्रकार वह अपने नाच-गाने, रंग-राग, गीत-संगीत के लिए भी अत्यन्त ख्याति प्राप्त किए हुए है। अपने इष्ट-देवताओं को कन्धे और सिर पर बैठा कर वह बाजे-गाजे के साथ नाचते और गाते हैं और प्रकृति के मोहक दृश्य को अधिक मुग्ध वातावरण वरदान करते हैं। तीज त्योहार, मेले-उत्सव, पर्व-समारोह तो नाच-गाने के अवसर हैं ही, नाच गाने के बिना तो इनकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। परन्तु गीत और राग तो यहां के लोगों की ज़िंदगी है, जीवन के अभिन्न अंग हैं। चाहे खेत में हों या खल्यान में, वन में हों या घर में गीतों की तान हर जगह पर हर मन को बहलाती है। पीठ पर भारी बोझ भी हो तो भी प्रकृति का यह चतेरा मधुर गीत गा कर अपना बोझ हल्का करता है। दुःख और सुख में गीत ही उसका निकटतम साथी है। हल चलाता हुआ, भेड़ें चराता हुआ, लकड़ी और फसलों का बोझ उठाता हुआ पुरुष बंसुरी, गलगोजा और गीत के स्वरों में जीवन की कटुता को भूल जाता है। भारी से भारी परिश्रम और कठिनाई की घड़ी को भी वह गीत-संगीत के दो टूक पदों से भुला देता है। इस प्राकृतिक स्थली का फूल व्यर्थ नहीं फूलता, नदी व्यर्थ नहीं गाती, झरने व्यर्थ नहीं गुनगुनाते, हरी घाटियां, श्वेत पर्वत शृंखलाएं व्यर्थ नहीं झिलमिलातीं। प्रकृति का चातक उनसे आत्म-विभोर हो कर उनका साथ देता है। उनकी पूजा करता है। उनकी विशिष्टता में योगदान देकर उसे चार चांद लगाता है। आदान-प्रदान ही तो जीवन है।

जिस प्रकार कुल्लू की भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि विशिष्ट है, उसी प्रकार इसकी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा भी परिपुष्ट है। लोकगीत, लोकनाच, लोक गाथाएं, लोक कथाएं, लोक सुभाषिताएं इस परम्परा के भरपूर खज़ाने हैं। देवताओं पर पूर्ण विश्वास करने वाला,

उन पर एक मात्र आस्था रखे हुए कुल्लू के देवता का पुजारी जब आंखें मीच कर पीठ की ओर से देवता के भण्डार से मुट्ठी भर कर पैसे निकालता है, तो वे पैसे देवता के नियत अवसर के खर्च के लिए हर तरह से पूरे हो जाते हैं। इसी परम्परा के अनुयायी के लोक-साहित्य के कोष में कहीं भी हाथ डाल दीजिए अभिमानपूर्ण अथाह सामग्री मिल जाएगी।

लोक साहित्य के इस खजाने में लोक-गीतों का विशेष महत्व है। यों तो लोक गीतों में संस्कार गीत, ऋतु गीत, धार्मिक गीत, श्रम गीत, त्योहार गीत, देवता गीत, ऐतिहासिक गीत सभी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं, परन्तु इन सब गीतों में दोहे-लामणों की अपनी अलग ही अनूठी झलक है। इन्हें बाह्मणू और भौंरू भी कहते हैं। विषय वस्तु की दृष्टि से दोहे-लामण, वाह्मणू और भौंरु एक समान हैं। वे सभी एक ही श्रेणी में आते हैं। परन्तु शैली की दृष्टि से ये एक दूसरे से भिन्न हैं। लय के उतार-चढ़ाव की बिना पर एक दूसरे से भिन्न किया जा सकता है। अन्य श्रेणी के गीतों से ये स्पष्टतः अलग हैं। गीत प्रायः सामूहिक रूप में गाए जाते हैं। परन्तु दोहे-लामण प्रायः सामूहिक नहीं वैयक्तिक गीत हैं। ये अकसर वनों के एकान्त में गाए जाते हैं। इनमें संगीत और बाजे-गाजे की भी आवश्यकता नहीं है, जैसा कि अन्य गीतों के लिए होना जरूरी है। इसी तरह दोहे-लामणों में नृत्य का समावेश भी जरूरी नहीं है। यदि नाच गाना लगा हो और किसी तरह दोहे-बाह्मणू की जरूरत पड़ जाए या ऐसी इच्छा हुई तो प्रायः नाच और राग बंद कर दिये जाते है और केवल एक या दो व्यक्ति लम्बी लय में दोहा या लामण गाता है।

प्रणय इन दोहे-लामणों का मुख्य विषय होता है। स्त्री का पुरुष के प्रति तथा पुरुष का स्त्री के प्रति प्रेम इन द्वारा अभिव्यक्त होता है। प्रेम, वासना और आसक्ति प्रायः इनके मुख्य क्षेत्र हैं। जंगलों में घास काटते हुए, लकड़ी इकट्ठा करते हुए, भेड़-बकरियां चराते हुए पुरुष या स्त्री की लम्बी लय और ऊंची ध्वनि में इन्हें प्रायः सुना जा सकता है। वास्तव में दोहे-लामणों में प्रेमचर्या की प्रेरक शक्ति बड़ी महान होती है। चूंकि जीवन में प्रेम और शृंगार का विशेष महत्व है, अतः गीतों में दोहे-लामणों का भी विशिष्ट स्थान है। यौवन के उन्माद स्वरों में जब प्रेम भरे गीतों का समावेश हो जाता है तो दोहे-लामणों में जादू का सा असर भर जाता है। सब काम छूट जाता है केवल एक बाह्मणू कानों और मन में रहता है :—

नाले बाज़ी बिशली, धारा रूणकी रागे।
दाची शोटी किलणी, बाह्मणू शुणदे लागे।

"ज्यों ही गहरे नाले में पुरुष की बांसुरी की तान सुनाई दी कि ऊंची

पर्वत शिखा (धार) पर लामण की लय छिड़ गई, और उधर खेतों में काम करने वालों की दरान्ती और कुदाल-किलण छूट गईं और बाह्मणू सुनने के लिए कान खड़े हो गए।" यही जादू है दोहे-लामण का। और इस जादू से बच कौन सकता है। आदमी तो क्या, इन द्वारा तो देवता भूल जाते हैं :—

झिकड़ू धोए निबले पाणीए, मुँहड़ू देंहीए धोए।
लोभी भलेरू हाजरी चाहुटे, देऊ भलेरू दोहे।

"कपड़े निर्मल पानी से धोए हैं और मुंह दही द्वारा। प्रियतम हाजरी और चाहुटे (दोहे की किस्मों) से मोहित हो गया और देवता दोहे द्वारा मुग्ध हो गया।" दोहे-लामण का यह जादू यहीं खत्म नहीं होता। क्या खेतों में काम करने वाला, क्या देवता और क्या विद्याध्ययन में मग्न सभी इसके असर से अछूते नहीं रह सकते :—

मोंझ मदरशा, फेर फिरदी शाढ़े री बूटी।
जेबे शुणे तेरे दोहे बाह्मणू, हौथे री कलमा छूटी।

"चारों ओर खुरमानी के वृक्ष हैं और बीच में स्कूल है। जब कभी दूर-पार गाया जा रहा दोहा-ब्राह्मणू कानों में पड़ता है, हाथ से कलम छूट जाती है।" मानों इन दोहे-लामणों ने सभी को मन्त्र-मुग्ध कर दिया है। जिस युवती ने मधुर-कण्ठ पाया हो और सुन्दर चेहरा फिर तो सोने पर सुहागा है :—

गिलड़ू थाने रे मुख मोहरे, गौहरी देऊआ री छौछी।
मन भलांदे बाह्मणू तेरे, माण्हू भलांदी हौछी।

"गिलड़ू थान देवता के मुख-मोहरे सुन्दर होते हैं और गहरी देवता का छाता उनसे भी सुन्दर। परन्तु प्रिय तेरे बाह्मणू में वह जादू है कि मन बहल जाता है और तेरे नेत्रों की सुन्दरता देखने वालों को पागल किए देती है।" जब जंगलों में ऊंची-ऊंची पर्वत शिखाओं पर स्त्री या पुरुष घास काट रहे होते हैं या लकड़ी इकट्ठा कर रहे होते हैं तो थकान दूर करने के लिए ऊंची लय से दोहे गाते हैं और नीचे खेतों या घरों में काम करने वालों को आह्वान देते हैं। नीचे ही क्यों इस पर्वत शिखा से दूसरी ओर की वादी तक यह बाह्माणू सुना जाए :—

चंद्रखणी रा ल्होसर आणू, चरढ़ गढ़ा रा दूणू।
दरपोइण धारा न लाणे बाह्मणू, रूपी लोड़ी फेटा-न शूणू।

"चंद्रखणी जोत से ल्होसर फूल और चरढ़ गढ़ से दूणू फूल लाए हैं। मैं दरपोयण पर्वत की चोटी से दोहे लगा रहा हूं ताकि रूपी वादी में भी इसे

सुना जा सके।" जैसे काम छोड़ कर भी दोहे लामण सुनने बैठ जाते हैं, वैसे ही एक गायक दूसरी गायिका को दोहे लगाने के लिए मजबूर करता है :—

घाह लुणनू आली घाहणीए, घाह खाऊ कलेशे।
घाह लुणना दे डिगणे, बाह्मणू मारदी वेशे।

"हे घास काटने वाली युवती ! तेरे घास को कलेशे पक्षी खा जाएं। घास को काटना छोड़ दे और जरा बाह्मणू गीत लगाने बैठ जा।" थकान दूर हो जाएगी और हमें दोहे सुनने का अवसर मिल जाएगा; तब उत्तर मिलता है :—

सौहा नौचले देउ-रे देउलू, बोणा नौचले गूणी।
मूंसी लाणे दोहे-बाह्मणू, कोनड़ू लाया शूणी।

"सौह (देवता के मन्दिर के आंगन) में देवता के उपासक नाच रहे हैं और वनों में लंगूर जानवर। मैं दोहे-लामण लगा रही हूं, ज़रा कान लगा कर सुनना।" और सुनना ध्यान से। मेरे दोहे-लामण में वह शक्ति है कि :—

सेर आणे मंगोहलू, पौथा आणे जुआणे।
उथड़ी धारा-न लानू भौंरू, लोका लोड़ी पौए तुआणे।

"एक सेर भर के भंग के दाने और पौथा (लगभग दो सेर) भर अज्वाइन का मिश्रण है। ऊंची धार से लामण लगाती हूं। सुनने वाले बेहोश होकर गिर जाएं।" यह दोहे-लामणों का प्रभाव है। नींद में भी इन्हीं के स्वप्न होते हैं :—

फूला बेठी फिफरी, तोड़ू बेशला कागा।
सुते हुंदा-न खोजू बाह्मणु छाती भलका लागा।

"तितली फूलों पर बैठी है और काक घर की छत पर। सोये हुए मेरे कानों में बाह्मणू सुनाई दिया और तभी छाती में आग लग गई है।"। दोहे बाह्मणू सुनते ही मन नाच उठता है :—

नाले लागे बाह्मणू, धारा लागले दोहे।
तू नौची राये रे खौला-न, हाऊं देऊ री सौहे।

"गहरे नाले से बाह्मणू के स्वर आ रहे हैं और पर्वत की चोटी पर से दोहे गाए जा रहे हैं। हे प्रिया, तुम खलियाण में नाचना मैं देवता के मन्दिर में नाचूंगा।" गायक का तो कहना है कि गीत तो दुख में भी गाया जाता है, परन्तु दोहे-लामण केवल सुख के साथी हैं, केवल सुख में ही दोहे-लामण गाए जाते हैं :—

सेरी बागा-न जौचड़ी लागी छेतड़ू बाहू मलीता।
सुखे रे लाणे दोहे बाह्मणू, दुखे री लागली गीता।

'सेरी बाग में जौचड़ी (नर्म छोटे पौधे) लग गई, खेत बोया है मल वाला (ज़रखेज़), सुख में गाएंगे दोहे-लामण, दुख में लगाएंगे गीत।' वैसे लामणों का परिवेश हमेशा सुख का रहा हो ऐसी बात नहीं है, दुख में भी दोहे-लामण गाए जाते हैं। परन्तु इनका मुख्य वातावरण सुख और प्रसन्नता का है। ज्यों ही शान्त वातावरण में लम्बी लय लेकर गायक लामण लगाता है, पथिक चलना छोड़ कर उसके गाने के शब्दों को सुनने बैठ जाता है :—

जौऊ फीरे पीऊंले, हौरे गेहूं री सेरी।
तेरे इन्हे दोहे-लामणे, मोंझ बौता भलेरी।

'जौ पीले पड़ गए हैं, हरे गेहूं की बहार है। तेरे इन दोहे-लामणों ने बीच रास्ते में भुला दिया।'

प्रणय

दोहे-लामण गीतों का मुख्य विषय प्रणय है। मनुष्य का जीवन प्रेम-भावसे ही आरम्भ होता है। विद्रोह, विक्षोभ, ईर्ष्या, द्वेष तो बाद की बातें हैं। मनुष्य का जीवन परिवार में मां-बाप के लाड-प्यार से आरम्भ होता है। माता और पिता के प्यार की गहराई को केवल मातृ-पितृ हृदय ही जानता है। इस प्रेम की अनुभूति ही हो सकती है, अभिव्यक्ति नहीं। यही कारण है कि लोक-गीतों का मुख्य भाग प्रणय से सम्बन्धित होता है। कुल्लू के दोहे-लामणों में माता-पिता, भाई-बहिन और अन्य सम्बन्धियों से सम्बन्धित प्रेम-भावना के कई उदाहरण लक्षित होते हैं। माता-पिता के लिए बच्चों के प्रति मोह सभी समाज में विद्यमान है। यदि घर में केवल एक पुत्र हो उसके लिए तो सभी वस्तुएं ,निछावर हैं, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त उसके साथ माता-पिता के जीवन का एक मात्र सहारा जुड़ा होता है। इसी लिए एक दोहे में कहा गया है कि जिस के केवल एक लड़का हो, प्रार्थना है कि वह लाख वर्ष जीए :—

"ठाण्डे पाणी रा डिभणू दूई चकोरीए पीऊ।
जूणी रा होला एक पुत्र लाख लोड़ी वौर्षा जीऊ।

एक अन्य दोहे में उस पुत्री का वर्णन है जो नवविवाहिता है, ओर अपने ससुराल में माता-पिता की याद में व्याकुल है :—

थाले पछियाई मांदरी, ऊझे पछियाई सेली।
आद लागी एंदी आमा बापूरी, निदर कोझीबे एली।

"अच्छा विस्तर वना है। नीचे मंदरी (चिट्टाई) विछाई है और ऊपर से सेला (वकरी की ऊन का पट्टू) विछाया है। परन्तु मुझे तो माता-पिता की याद आ रही है नींद तो विल्कुल आ नहीं रही है।" कितनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। मां-बाप के प्यार के साथ भाई-बहिन का प्यार सर्वव्यापी है। किसी छोटी बहिन का भाई नौकरी चला जाता है और बहिन की दशा का वर्णन देखिए :—

चोली छींटा री, दाउण भौरी री टौल्ही।
भाई नौठा दूरा नोकरी, सारी बिंदरा तौल्ही।

"भाई ने छींट की कमीज दी है जो दामन से फट गई है और उस पर टांका लगा है। उसी को देखते ही वहिन को भाई की याद आई है जो नौकरी गया है और उसी की याद में वहिन को संसार हिलता-डोलता नजर आ रहा है।" एक दूसरे लामण में कहा गया है कि भाई कहीं दूर देश गया है और वहिन ने सारा शिमला उसकी खोज में ढूंढ मारा है—

छोटकी काइली लोमे रौई रे टोपू।
भाई न्हौठा दूरा पारा बे सारा शिमला तोपू।

एक वहिन अपने भाई से अनुरोध करती है कि हे भाई तू फिरंगी की नौकरी छोड़ दे और घर वापिस आ—

सूने री सीउण सूरजे भेजी सरोई।
छौड़ी देणी भाईया फरंगी री नोकरी, घौरा-बे एजणा होई।

नारी के जीवन की भी कितनी विडम्वना है। जव तक विवाह नहीं होता मां-वाप का घर उसका घर है। वह इसी परिवार की सदस्या है। उसी कुटुम्ब का एक अंग है। विवाह हुआ नहीं कि मां-बाप का घर उसके लिए बेगाना घर हो गया। वह उसका घर नहीं रहा। उसकी परिवार-सदस्यता समाप्त हो गई। वह अब पराया घर है। अव उसका असल घर पति का घर है। वहां की ही वह सदस्या है उसी की सुख सम्पन्नता उसकी मूल इच्छा है। विवाहित घर अव उसका असल घर है। माता-पिता का घर धीरे-धीरे उसके लिए पराया होने लगता है। सम्वन्ध कम होता जाता है और शीघ्र ही वह घर जिसने उसे जन्म दिया था बिल्कुल प्रदेश है। कुल्लू के समाज में तो पुत्री के लिए पिहर-पेउका अर्थात मायका केवल माता-पिता तक रहता है उसके बाद तो उसका सम्बन्ध टूट जाता है। भाई वहिन का सम्वन्घ तो दोस्त मित्रों का सा सम्वन्ध रहता है, तभी तो कुलुई लोकोक्ति भी प्रचलित है—"दूई वहणी पोई नौई आप-आपणी पौई," अर्थात दो वहिनें पड़ी नदी में और दोनों को अपनी-अपनी जान के लाले पड़ गए। एक गृह में जन्म पाकर पृथक होना और पृथक हो कर अलग गृह और समाज बनाना यही विश्व के विकास का नियम है। कुलुई दोहे में इस भाव को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है : —

पोशा माघा री निहारखू राती-न, कुण्ही पौई कुण्ही निहारी।
आमा बापू ताईं पिहर–पेउका, भाई ताईं रिश्तादारी।

"पौष और माघ की अन्धेरी रातों में (अर्थात मेरे जीवन के बुरे दिनों में) कोना-कोना अन्धेरा है। माता-पिता तक मायका था, भाई तक रिश्तेदारी" और उसके वाद पूर्णतः पराया घर हो जाता है। एक दूसरे लामण में तो मां-

वाप के प्यार को ही प्यार कहा है। भाई का प्यार स्वार्थी प्यार है, उसका प्यार झूठा प्यार है—

बिंदरा बोणा-न भूजी खोड़ा रा बूटा।
आमा बापू ताईं पिहर पेउका भाई रा सौउदा झूठा।

फिर भी भाई भाई ही है। माता पिता का मोह, भाई का प्यार विवाहित लड़की को हमेशा तरसाता रहता है। एक दोहे में तो मृत्यु भी मां-वाप की गोद में मांगी है—

चूटी रा किरड़ू, दूर बाई रा पाणी।
आमा बापू रे फाहड़ा-न लोड़ी मौत, भाई लोड़ी चौकदा जमाणी।

सम्भवतः ससुराल के कष्टदायक जीवन से निराश होकर इस लामण का निर्माण हुआ हो 'किलटा टूटा फूटा है और उसमें दूर चश्मे से पानी लाना पड़ता है। वेहतर है मां-वाप की गोद में मृत्यु हो और भाई मेरी अर्थी उठाने वाला हो।'

मां-वाप तो वच्चों के कष्ट को कभी नहीं देख सकते। वे स्वयं तकलीफ सह सकते हैं वच्चों का कष्ट उनसे वरदाशत नहीं होता। और जव उन्हें घर से वाहर रोज़ी कमाने या नौकरी करने जाना पड़ता है तो उनकी दशा दयनीय हो जाती है—

उथड़ी कोठी-न फेर फिरदे खिड़कू लागे।
बेटा न्हौठा दूरा-री नोकरी, दाह लागी कौकड़ी आगे।

"चारों ओर खिड़कियां सजा कर नई कोठी वना दी है। परन्तु इस कोठी में रहने वाला कौन है? इकलौता वेटा दूर नौकरी करने चला गया है। इस दिल के दर्द को कैसे सहन करूं।" माता-पिता तथा भाई-वहिन के प्यार को एक अन्य बाह्मणू में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है:—

बेढ़े हेठे जाइरू, बेढ़े धामे मजूरी।
आमा-बापू री मोहमा, भाई भियारू री झूरी।

अर्थात् मां-वाप के साथ मोह होता है और भाई-वहिन का प्यार। आज पुरानी संस्कृति को विज्ञान के प्रभाव में प्रायः भुलाया जा रहा है। आज मां-बाप के चरण-वंदना केवल चिट्ठी-पत्रों तक सीमित रही है। वरना कौन पैर वंदता है। परन्तु कुल्लू के समाज में वर्ष में दो-तीन त्योहार ऐसे आते हैं जिन में सुवह-सवेरे सवसे पहले माता-पिता को अवश्य जूब (फूल आदि) देकर उनके चरणों को छू कर प्रणाम किया जाता है और उसके वाद नाता-रिश्ता और पास-पड़ोस में सव को नमस्ते और प्रणाम किया जाता है। यह केवल त्योहार का नियम नहीं है। सच्चा प्रेम है। ज़रा मुलाहिज़ा फरमाएं:—

साजा लागा शौइरी, जाच लागली खौला।
आमा-बापू रे चरण-बंदने, भाई रे मिलणा गौला।

"शैरी का त्योहार आया है। खलियान में मेला लगा है। माता-पिता के चरण-कमलों को प्रणाम किया जाएगा और भाई के गले मिलेंगे।" यह त्योहार विवाहित लड़की को मां-बाप से मिलने का अवसर देते हैं वरना खेत और खलियान का काम मां-बाप के घर आने की कहां इजाजत देता है :—

साजा निभू थी माघारा, छ्के सा शौइरी आई।
आमा-बापू हुए जुँखड़-जुँखड़, हाऊं सा मिलदी आई।

"माघ का त्यौहार समाप्त हो गया है और शीघ्र ही शैरी का त्यौहार आया है। मेरे माता-पिता बूढ़े हो गए हैं। मैं उन्हीं से मिलने आई हूं।" मां-बाप का उत्तरदायित्व किसी विशेष समय तक रहता है। उसी समय तक मां-बाप अपनी जिम्मेदारी से बच्चों को सही दिशा देने में समर्थ होते हैं। जब बच्चे आयु में बड़े हो जाते हैं, मां-बाप की ज़िम्मेदारी तो खत्म नहीं होती परन्तु तब तक बच्चों की विचार-शक्ति सुदृढ़ हुई होती है तब बच्चों की मां-बाप के प्रति जिम्मेदारी आ जाती हैं। बच्चों और मां-बाप की यही दोहरी जिम्मेवारी है जिसे यदि सही दिशा मिल गई तो न केवल परिवार की सुख-सम्पन्नता बढ़ती है, वरन् पूर्ण समाज इसका उपयुक्त फल पाता है। तभी तो कुलुई लामण में यह इच्छा की गई है कि भाई का प्यार और मां-बाप की सेवा का मुझे सौभाग्य प्राप्त हो :—

हौथ कजौशला हुआ माण्हू-रा, बौल दे पेऊकी देऊआ।
भाई-भरयारू रा झूरी-लोभ, आमा-बापू री सेऊआ।

"मेरे हाथों का यश क्यों अपयश में बदल गया। हे मायका के देवता मुझे यश दे। मुझे भाई-बहिन का प्यार नसीब हो और माता पिता की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो।" एक अन्य दोहे में माता-पिता को स्नेह का स्रोत बताया गया है और भाई को सुख और दुख का साथी कहा गया है :—

यार मित्र खाणे पीणे रे लालची, गर्जा डांहदे नाती।
आमा-बापू लोभा-शोभावे, भाई दुखा-सुखा बे साथी।

"मित्र, दोस्त, यार सभी खाने पीने के लालची होते हैं, रिश्तेदार वक्त पर काम देते हैं। माता-पिता तक शोभा है और भाई बहिन दुख और सुख में हाथ बटाते हैं।"

माता-पिता, भाई-बहिन के साथ-साथ अन्य सम्बन्धियों के प्रति भावना भी इन दोहे-लामणों में व्यक्त होती है। सास और ससुर से बहु को प्राय: शिकायत रहती है। यह संसार का नियम है, किसी समाज विशेष की बात नहीं।

किसी पराये बेगाने घर की विवाहिता जब घर में प्रवेश करके घर की सांझेदार बनती है, तो सास ससुर को उसे अपनाने के लिए दिल चाहिए ही। नवागन्तुका का रूप-रंग कैसा हो, हाव-भाव क्या हों, चाल-ढाल कैसी हो, काम धन्धे में कैसी होगी ? यह तो प्रायः जिज्ञासा और उत्सुकता रहती ही है। किसी अजनबी को अपना बनाना कठिन तो होता है। इसलिए सास-ससुर की प्रतिक्रिया प्रायः दुखदायी होती है। यह नवागन्तुका का सौभाग्य है कि उसे शीघ्र पूर्ण अपनत्व मिल जाए। तब वह अवश्य ही अपने को सौभाग्य समझती हुई जरूर कहती है :—

तेरा मेरा संग लोभिया, सराजी पुला़ री जोटा।
शौशू शौउरे शिरा री पगड़ी, देउर पाणी रा लोटा।

"हे प्रिय ! तेरा और मेरा साथ इतना अटूट है जितना पैर की घास की जूतियां (एक के टूटने या अलग होने से दूसरी बेकार हो जाती है)। मेरे सास और ससुर सिर की पगड़ी हैं और देवर पानी का लोटा है।" सास-ससुर को सिर की पगड़ी कहना न केवल उनके लिए स्नेह का द्योतक है, वरन् उनकी आज्ञा को शिरोधार्य मानना भी प्रकट होता है। एक दूसरे लामण में भाभी की उपमा गुलाब के फूल से दी गई है :—

ऊझे खोखण, बून्हे भूइण तौरा।
भाभी सा मेरी गुलाबा रा डोल्हरू, भाई सूना रा जौरा।

"ऊपर खोखन गांव, नीचे भौंतर (शहर है)। भाभी है मेरी गुलाब का फूल, भाई सोने का ज़ौरा (जौ का फूल)।' घर में इस तरह की भावना ही परिवार की उन्नति के लिए स्वच्छ वातावरण पैदा करती है। प्रणय के साथ रहने वाला परिवार ही स्वस्थ वातावरण का भागी होता है। यही घर की सुन्दरता है। प्रेमभाव से जहां जीवन यापन होता है वह कुटुम्ब की प्रगति का परिचायक है। यदि यह प्रेम समाप्त हो और परिवार में कलह पैदा हो तो सुख और चैन नहीं मिल सकता :—

न्हौठा हिऊंद, बास्त एजला काला़।
झू़री चूटी सोरे भरयारू री, शोभ न्हौठी दोंदे री माला़।

'गया हेमन्त, गर्मी (का मौसम) आएगा काला। प्रणय टूटा सगे भाई-बहिन का, सुन्दर गई दान्त की माला।' भाई-बहिन के प्यार में यदि बाधा पड़ी तो ऐसा ही बुरा है जैसे दान्त की माला टूटने से सुन्दरता समाप्त होती है।

——

संयोग

जोवन का आरम्भ प्यार और प्यार के परिवेश में होता है। शिशु का प्यार, मां-बाप का प्यार, सास, ससुर, ननद, भावज, जेठ, बहु सभी तरह के प्यार जीवन में मिलते हैं। यही संयोग की धारा है। मिलन के साथ प्रेम की शुरुआत मानव जीवन की साधारण घटना है। परन्तु इस प्रेम के प्रवाह में क्या मोड़ आता है, यह भी संयोग की बात है। और संयोग की अभिव्यक्ति लोक-गीतों और साहित्यिक गीतों में कई तरह से हुई है। लोक-गीतों में प्रायः शृंगार रस की प्रधानता रहती है। यह बात कुलुई दोहे-लामणों के प्रसंग में भी शतशः सत्य है। प्रेम-गीतों में संयोग की भावना उत्कृष्ट ढंग से अभिव्यक्त हुई है। संयोगात्मक शृंगार प्रधान दोहे-लामणों में रंग-रूप, सौन्दर्य का बखान ही अधिक रहता है। वास्तव में संयोग की भावना का जन्म ही सौन्दर्य से आरम्भ होता है और उस सौन्दर्य को लोक-कवि अत्यन्त चतुराई से अभिव्यक्त करता है—

गेहूं गौगरे, पीउंले जौऊरी काशी।
चन्द्रा सेंही नज़री तेरी, सूरजा सेंही पियाशी।

सुन्दरता की तुलना चन्द्रमा से प्रायः सभी समृद्ध साहित्य में मिलती है, परन्तु सूर्य से सुन्दरता की उपमा कुलुई लामण की ही विशेषता है। तभी तो कहा है 'गेहूं अभी हरे है, जौ में पीला रंग आ गया है। हे प्रिया ! तेरे नयन चन्द्रमा के समान सुन्दर हैं और तेरा चेहरा इतना प्रकाशमान है जितना कि सूर्य।' इसी तरह शरीर के विभिन्न अंगों की शोभा की अभिव्यक्ति संयोग की अभिव्यंजना है—

फूल फूलू फूलणू झूरीए, भौर फूलला पाला।
ज्हारा-ज्हारा रे हौखड़ू तेरे लाखे री दोंदे री माला।

"चारों ओर फूल ही फूल खिले हैं, और पाला के वृक्ष पर भी खूब फूल खिले हैं। हे प्रियतमा ! तेरे नेत्रों का हजार हजार मूल्य होगा और तेरे दांतों की माला लाख रुपये की है अर्थात अमूल्य है"—

मखमला रे थिपुरा भलका, लोमे देई जुटु रे फेरे।
किहां भलेरने झूरिए मूंता लाल गलोटड़ तेरे।

'मखमल के थिपू (दुपट्टा) में प्रिये तू कितनी सुन्दर लग रही है और उसके ऊपर जूटू (परांदे) की शोभा देखने योग्य है। हे प्रिये! तेरे गुलावी गालों को मैं कैसे भूल पाऊं।' और यह सुन्दरता एक-तरफी नहीं है। प्रियतम किसी भी तरह प्रियतमा से कम सुन्दर नहीं है। यदि एक नरगिस का फूल है तो दूसरा गुलाव है :—

गेहूं जोंदरे ऊबण, जौऊ जोंदरे सौरी।
लोभी गलाबा रा डोल्हरा, झ़ूरी सा बोदी री तौरी।

एक दूसरे दोहे में प्रियतमा को मैदान की चकोरी और प्रियतम को पर्वत का पक्षी कहा गया है :—

खाई दपौहरी खाऊ ग्रौधला सीड़ू।
झ़ूरी सा बोला बाल्हा री चाकरी लोभी जोतारा चीड़ू।

प्रिया के रूप का गुणगान साधारण नहीं है। वह साधारण सुन्दर नहीं। तुलना में भी वह औरों से कहीं वढ़ चढ़ कर है :—

बून्हे बोलणा सोमसी ऊझे खड़ा जमोटा।
होरी री झ़ूरी पीउंली-भीउंली, मेरा सा मांजुग्रा लोटा।

संयोग आखिर संयोग ही है, और यह संयोग उमर भर के लिए हो तो वही जोड़ा खुश-किस्मत है। एक वार मिलन हो तो जोड़ी जुग-जुग जिए इसके बीच में कोई रुकावट न हो, कोई वाधा न हो। दम्पत्ति हमेशा यह अराधना करते हैं कि यह संयोग हमेशा वना रहे।

लोमे केलू री बूटड़ी सदा बे हौरी री हौरी।
जेण्डी जोड़ी थी फोटू-न म्हारी, तेण्डी लोड़ी उमर भौरी।

'देवदार का वृक्ष सदा-वहार वृक्ष है। हमेशा हरा भरा रहता है। हे प्रभु! जैसी हमारी फोटो में जोड़ी है वैसे हम उमर भर साथ रहें।' और यह प्यार अनैतिक नहीं है। केवल भौतिक सुखों या क्षणिक विलास का झूठा प्यार नहीं है। यह प्यार आदर्शता की सीमा में वन्धा रहे। इस में स्थिरता हो। भोग विलास का क्षणिक उवाल नहीं। हम उमर भर के पति-पत्नी के नाते में वन्ध जाएं :—

उथड़ी धारा-न केलूरे बूटड़ू घोणे।
जौसा भूरी ताईं लौड़-फड़ाहुए, सके लोड़ी दुहरू बोणे।

'ऊंची पर्वत श्रृंखला पर देवदार का घना वन है। जिस प्यार के लिए हम तड़फते रहते हैं, हमारी इच्छा है कि वह पति पत्नी के रूप में वदल जाए।' यदि सच्चा

प्यार हो तो उसके रास्ते में कोई बाधा नहीं हो सकती। वह कभी न कभी फलीभूत हो जाता है। सम्पूर्ण होने के बाद वह टूट नहीं सकता। जीवन में कठिनाई भी हो तो भी सच्चा प्यार टूट नहीं सकता। चाहे यह सुन्दरता की अतिशयोक्ति है या यथार्थता, परन्तु लामण इस बात का प्रमाण है—

धारा चौरले घोरड़-काकड़, चाहड़ी चौरला वीणा।
गला शुणीया उमर काटणी, मूंहड़ू हेरीया जीणा।

'पर्वत चोटी पर घोरड़ और ककड़ (जंगली बकरे) चर रहे हैं और चट्टानों पर कस्तूरा चर रहा है। हे प्रिया! मैं तेरी बातें सुन-सुन कर उमर व्यतीत करूंगा और तेरा सुन्दर मुखड़ा देखकर जीता रहूंगा।' मैं केवल तुझे नजर के सामने चाहता हूं। और मुझे कुछ नहीं चाहिए—

लोके रे जाचू सौहा-न पुहते, लोभी रे जाचू पीछे।
तू लोड़ी थी नजरी पांधे, होर नी लोड़ी कीछे।

संयोग में केवल भाग्य ही रोड़ा डाल सकता है, अन्यथा संयोग के सुख को कोई नहीं छोड़ना चाहता। जब दो दिल मिल गए फिर दुनियां की कोई वस्तु दरकार नही है। इसे चाहे प्यार कहो या धृष्टता। पापी मन को दूसरी बात सूझती ही नहीं—

धारा फूलली कूरी कूंवर, नाला फूलला कूजा।
पापी गोऊ मेरा दिलड़ू, नी साधदा दूजा।

यह मिलने की इच्छा है या मिलने के बाद न बिछुड़ने की आकांक्षा। परन्तु है सच्चाई। और इस सच्चाई में बल है, शक्ति है। एक बार हाथ पकड़ लिया तो फिर वचन से फिरने की बात नहीं है, वचन में भूल हो सकती है, मन साफ होना चाहिए। मन जीते जग जीत—

पेछे ढौगा रा बौगड़ा, पिरड़ी पीछा रा कौहू।
जोड़े देणे देऊआ बे बौकरू, संग लोड़ी सोदा वे रौहू।

'देवते को बकरे का जोड़ा देंगे, हमारा यह साथ हमेशा के लिए रहे।' ऐसी विनती करना कुलुई समाज के लिए कोई असाधारण बात नहीं। हर दम्पति की उमर भर का अटूट प्यार रहने की इच्छा होती है और उसके लिए अपने इष्ट देवता से प्रार्थना करना बड़ा स्वाभाविक है। बेशक सारा जग बैरी हो जाए परन्तु मेरा और तेरा प्यार हमेशा फलता फूलता रहे—

गीठे भौकली आग, छापरे निकता धुआं।
संग नी छौड़ना लोभीया, जग लोड़ी बैरी हुआ।

'अंगीठी में आग जली है, छत से धुआं निकलने लगा है। हे प्रिये! साथ नहीं छोड़ेंगे चाहे सारा संसार दुश्मन हो जाए। हमारा साथ ऐसा ही अटूट है जैसे एक वृक्ष की शाखाएं—

छोटका बूटड़ू फेर-फिरदी पांघी।
दिला मना रा संग सा म्हारा, कदी नी होणा अांगी।

'छोटे वृक्ष के चारों ओर शाखाएं हैं। हम दोनों का दिल-मन का प्यार है। कभी अलग नहीं होंगे।' इस साथ को वरकरार रखने के लिए तैयार हैं। चाहे कोई भी कीमत देनी पड़े परन्तु साथ नहीं छोड़ेंगे। जमींदार के लिए बैल की जोड़ी से बढ़ कर और अमूल्य निधि क्या हो सकती है। पर प्यार के आगे यह भी कुछ नहीं है। हमारा संयोग स्थायी रहे चाहे बैल भी बिक जाएं :—

खीर गंगा रा पौधरू, भेखली धारा री तीके।
जेबे ढौकुए पालू-न, जोड़े लोड़ी बौलद बीके।

'खीर गंगा का समतल स्थान, भेखली धार के सामने है। जब पल्ला पकड़ लिया है तो बैल की जोड़ी बिक जाए साथ नहीं छोड़ेंगे।' परन्तु यह साथ सोच-समझ कर ढूंढ़ा जाए तभी वह हमेशा-हमेशा के लिए रहेगा। झूठा साथ कभी स्थायी नहीं होता। सच्चा प्यार ही सच्चा साथी होता है और वही उमर भर हरा-भरा रहता है :—

हाथी-बे लागे घूँघरू, घोड़े-बे लागी बनाती।
संग ढौकणा शोभला, लोड़ी जुगा-बे साथी।

मिलन तभी स्थायी रहेगा जब मन पसन्द की जोड़ी हो। संयोग अन्यथा तुरन्त वियोग में बदल जाएगा, और यह वियोग दुखदायी नहीं हो सकता जैसा प्राय: वियोग में हुआ करता है। यह तो झूठे प्यार की जुदाई होना है जो निस्सन्देह जरूरी है, क्योंकि बेमेल की जोड़ी में इतना ही कष्ट होता है जितना तंग जूता कष्ट देता है :—

बेढ़े हेठे जाइरू, बेढ़े धामें मंजूरी।
जोंघा साधिदे बुटकू, मना रुचदी झूरी।

प्रेम का तन्तु बड़ा नाजुक होता है। कब टूटता है, कोई निश्चय से नहीं कह सकता। समाज में प्रेमी-प्रेमिका का प्यार कभी तो ताना-बाना ही बुनता रहता है, उसे मूर्त रूप लेने का मौका ही नहीं मिलता। परन्तु एक बार संयोग हो जाए तो इच्छा हर समय यही रहती है कि यह प्यार कम न हो, संग छूटे न :—

शिरढ लागा काहिका, भूइण लागा कापू।
कदी नी घटणा लोभ म्हारा, कदी नी बिछड़े आपू।

'शीरढ़ गांव में काहिका मेला लगा है और भूइण में कापू मेला। हमारा प्यार स्थायी है कभी नहीं घटेगा, और न हम कभी विछड़ेंगे।' और विछड़ने का कारण भी क्यों हो। जहां प्रिये तुम जाओगे क्या मुझे साथ नहीं रखोगे? क्यों नहीं? हमेशा साथ रहेंगे। यदि परिस्थिति मुझे देश छोड़ने पर मजवूर करे तो भी तुम्हें साथ ले चलूंगा। जो शेष आयु वची है वह भी वाहर जाकर साथ विताएंगे—

तिली बी तिली शुद्धे सूने री तिली।
औधी उमर काटी कुल्लू रे देशा-न, औधे बे जाणा दिली।

'मेरे नाक की तिली (आभूषण विशेष) शुद्ध सोने की है। आधी उमर हमने कुल्लू में गुजारी है। आधी हम दिल्ली गुजारेंगे (जहां तुम्हें मजवूरन जाना पड़ रहा है।) कुल्लु हो या दिल्ली, जहां भी जाना पड़े हम साथ चलेंगे। कदम-कदम पर साथ चलेंगे—

बूटी झ़ालर फूल फूले रंग–बरंगे।
साथ सा म्हारा लोभा-शोभारा, सदाए होंडणा संगे।

'झूमते हुए वृक्ष पर रंग-वरंगे फूल खिले हैं। हमारा साथ प्यार और सौन्दर्य से भरा है। हमेशा साथ चलते रहेंगे।' संयोग केवल दिल का मिलाप नहीं है। शरीर में भी वरावरी है—

घोणी मरहौणी, मोहरू लागले पाल़े।
लोभी की जोड़ू तिन्हारी खाणीए घूंडी मूंडी रे ढाल़े।

'मोहरू वृक्ष के झुण्ड में, मोहरू पाले के फल लगे हैं (यह अस्वाभाविक बात है मौहरू पर पाले नहीं लग सकते) पति ऐसा मिला है जो एड़ी से चोटी तक तेरे साथ एक वरावर है।'

देवते के बिना कुलुई समाज में कोई मेला नहीं लगता। देवता का रथ आएगा तो मेला लगेगा। मेला लगने का अर्थ है खुशियां मनाना, हंसी-खेल और आपस में मेल-मिलाप। परन्तु जहां संयोग अच्छा हो, दो दिल मिले हों वहां विना देवता के भी मेला लग जाता है :—

बून्हे धीरे माहुला, ऊझे खड़ी सराचा।
तेरा मेरा मिलण संगोया, बीणी देऊआ री जाचा।

और आखिर देवते की ज़रूरत भी क्या है। प्रेमी और प्रेमिका का मिलन अपने आप में मेला है। प्रेमिका देवता है :—

हेठे बोलणा शहरा, ऊझे भूठी नड़ाधी।
जौखे मेलू भूरी रा रौथड़ू, फूल लोड़ी मालती राधी।

'नीचे शहर और ऊपर भूठी नड़ाधी गांव है। जहां प्रेमिका का रथ (रथ हमेशा देवता का होता है) मिले वहां मालती फूल खिल उठेगा।' और यह मालती किस के लिए सुरक्षित है, प्रेमी के लिए :—

हौरी नगाली रा भौरलू, फूल भौरू गलाबे।
थोड़े बेचे हाटी-बजारा-न, बोहू डाहणे तौबे।

'हरे बांस की टोकरी बनाई है और वह गुलाब के फूलों से भरी है। यह गुलाब कुछ ही हाट-बाज़ार में बेचूंगी, शेष बहुत भाग मैं तुम्हें रखूंगी।' फूल प्रायः फूल ही है। इसे या देवते को चढ़ाया जाता है, देवते की मूर्ति को भेंट किया जाता है, या फुलबाड़ी की शोभा बढ़ाता है, या गुलदस्ते के काम आता है और जहां भी वह हो सोन्दर्य का प्रतीक है, वह उस स्थान की शोभा और मान बढ़ाता है, परन्तु यह फूल दिल-पसन्द उद्देश्य के इलावा कहीं और नहीं जा सकता :—

छोटकी काइलीए लोमी लबौहड़ रौईए।
फल देणा रीझे रे माण्हू वे कीता शोटणा नौईए।

"चील का वृक्ष छोटा और रई का बहुत लम्बा है। फूल या तो प्रेम के व्यक्ति को देंगे, या नदी में फेंक देंगे।" स्पष्ट है कि संयोग सौन्दर्य अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रेम के स्थायित्व का बखान भी है :—

लोभी शीशा रा आरशू, फाढ़ा-न फोटू नशाणी।
झूरी पूनू री चनण, जोड़ा मौगरू पाणी।

"प्रियतम शीशे का दर्पण है और प्रेयसी पूर्णमासी चंद्रमा के समान है। दोनों पानी की दो धाराएं हैं और उनका फोटू गोद (जेब) में निशानी है।' इस प्रेम के स्थायित्व के साथ-साथ उस का सच्चा स्वभाव है। प्रेम में अमीर-गरीब, ऊंच-नीच कुछ भी बाधक नहीं है :—

बाहुड़ी लागली बेसुईं, छापरा लागली काती।
भूख नी बूझंदी लूणा-श्रौलणा, लोभ नी पुछदा जाती।

'फरश पर तख्ते लगे हैं, छत पर लगी हैं शहतीरें। भूख नहीं देखती नमक या कम नमक, प्रेम नहीं पूछता जाति को।' अकसर कहा जाता है कि प्रेम अन्धा होता है, वह अच्छे और बुरे की पहचान नहीं कर सकता। प्रेम का सम्बन्ध दिल से है। इस में तर्क-वितर्क का कोई स्थान नही, जहां दिल लग गया, वहां विश्वास ही एक मात्र कसौटी हैं और विश्वास के लिए दलील की आवश्यकता नहीं है। मन करता है प्रेमिका के साथ हर पल बातें करते रहे जिन में कोई वैर-विरोध की गुंजाइश नहीं :—

खोरी रोपे री माहुरी, पोई ढेके-रे बौले।
शोख नी रौज़दी च़ूलू पाणीए, झ़ूरी नी रौज़दी गौले।

"खोरी रोपा का माहुरी धान, गिर गया खेत के अन्दर की ओर, प्यास नहीं बुझती चूलू भर पानी से, प्रेमिका नहीं संतुष्ट होती बातों से।" बूंद-बूंद से प्यास तेज ही होती है बुझती नहीं, वही हाल प्रेम का है। बातें कर-कर भी मन की तृप्ति नहीं होती। तभी यही इच्छा व्यक्त होती है कि हे प्रिया हमारा साथ हमेशा चलता रहे। हम एक कदम भी अलग न हों :—

सोमसी देवी रे मुख-मोहरे, माहुल़ देऊ रे बागे।
सोह़ हेरी केरदी सोरे भरयारूरी, गोईं हेरी शोटदी आगे।

"शमशी देवी के मुख-मोहरे, माहुल के देवते की पोशाक। कसम मत खाना सगे भाई की। कदम मत रखना आगे।" यही वचन चाहिए कि हम एक कदम भी ज़ुदा न हों।

वियोग

संयोग और वियोग जीवन के दो शाश्वत पहलू हैं, ऐसे ही जैसे प्रकृति में दिन और रात्रि का अस्तित्व है। एक दूसरे से अलग-अलग होने के बावजूद भी इन्हें जुदा नहीं किया जा सकता। मिलन का सामान्य विचार ही जुदाई का अनिवार्य अस्तित्व अनायास प्रकट करता है। मिलने के बाद जुदाई का होना ऐसा ही स्वाभाविक है जैसा दिन के बाद रात। स्पष्टत: जीवन मिलन और जुदाई का ही बखेड़ा है। इसी प्रवृत्ति ने साहित्य में संयोग ओर वियोग या मिलन और विरह की भावना को जन्म दिया है।

जिस प्रकार जीवन में मिलने और जुदा होने के झमेले स्वाभाविक हैं वैसे ही संयोग और वियोग भी परिस्थितियों के अनुसार प्रेम के दो शाश्वत पक्ष हैं। प्रेम में युग युग तक दो दिलों की अविरत इच्छा और भावना ही इस बात का संकेत है कि प्रेम का यह तन्तु इतना नाजुक है कि इसके सदा अटूट रहने की संभावना पर तुरन्त ही सन्देह होने लगता है। यही कारण है कि चाहे विशिष्ट साहित्य हो या लोक साहित्य दोनों में संयोग और वियोग का वर्णन नितान्त साथ-साथ चलता है। दो दिलों के प्यार की भावना को यहां एक ओर इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है—

देशी ऊना रा चितरा चाधरू, रफल ऊना री ताणी।
तेरी मेरी जिंदड़ी लोभीया, फेटी कुल्हा रा पाणी।

"देसी ऊन का ताना और रफल का वाना लेकर सुन्दर पट्टू का निर्माण किया गया है (अलग-अलग ऊन के होते हुए भी, ऊन के सामंजस्य से सुन्दर पट्टू बना है) ऐसे ही हे प्रियतम तेरा और मेरा प्रेम समतल नहर का पानी है, जो शान्त और निश्चलता से अविरल चलता रहेगा।" ठीक इसी भावना के विपरीत जीवन की यथार्थता अनायास सामने ग्रा जाती है। निस्सन्देह प्यार अटूट, नित्य अविरत, सतत् और स्नातन है परन्तु फिर भी भीतर ही भीतर दिल के एक कोने में इसके टूट जाने का डर क्यों स्थान लिए रहता है। क्या यह जीवन की

विडम्वना नहीं है ? समतल नदी के पानी की तरह वरावर शान्त और निरन्तर भाव से प्रेम की नाव चलाने की इच्छा रखने वाले दो हृदय विछोड़े की आग में जल मरते हैं।

शोझा निकती बादली, भुइण निकता तारा।
सूरजा बिछड़ी चंदर, संग बिछड़ू म्हारा।

"आकाश पर इस विचित्रता को तो देखो ! एक तरफ शोझा के ऊपर तो बादल है और साथ ही दूसरी और भूइण के ऊपर तारे चमक रहे हैं। हे प्रिया ! जिस प्रकार सूर्य से चन्द्रमा अलग हो गया है, वैसे ही हम दोनों का प्यार टूट गया है।" और जब दो प्रेमी-हृदम टूट जाते हैं तो यह वियोग हमेशा तरसाता रहता है। वेरहम याद सदा सताती रहती है। इसे तरस नहीं आता :—

भेड़ा चारी पुहालुए, गोरू चारे गुआले।
ठारा लागी सोठणी, बारा लागे बुआले।

"विछुड़े भी कैसे ! एक को एक वन में भेड़ें चरानी पड़ती हैं और दूसरे को दूर गौएं चरानी पड़ती हैं और दोनों को एक दूसरे की याद ऐसी सताती है कि अठारह बार (वार-वार) निष्ठुर याद आती है और जले हृदय को जलाती रहती और उसमें बारह (असंख्य) उबाल आते रहते हैं।"

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के सन्त कवियों की रचनाओं में एक बहुचर्चित उक्ति आती है कि हे वैद्य तू मेरे हाथ या नब्ज को क्या देखता है। यह दर्द तेरे वश का नहीं है। यह विरह का दर्द है जिसका मिलन के विना और कोई उपचार नहीं है। यहां आत्मा की परमात्मा से विरह की बात है, अथवा सन्त कवि भगवान के वियोग में मनुष्य के दुःख की असह्य दशा का वर्णन करते हैं। रीतिकाल और वाद के साहित्य में यह विरह विलाप ऐहिक संसार के साधारण व्यक्ति के लिए व्यक्त होने लगा। यहां प्रेयसी के विरह के कारण दुःख के भाव की अभिव्यंजना होने लगी। यही लोक-साहित्य में भी देखने मे आता है, चाहे इसे आत्मा के परमात्मा के प्रति विरह का विवरण समझिए या प्रेमी का प्रेमिका के प्रति वियोग का वखेड़ा। परन्तु यहां लोक-कवि की भाव व्यंजना कुछ भिन्न है :—

जऊरी लागी जोचड़ी गेहूं री लागी कुंगी।
ठारा लाए वैद, दुखे आणी कौकड़ी छुंगी।

"जौ के छोटे पौधे उग आए हैं और गेहूं की अभी कोंपलें फटी हैं। इस हरियाली में विरहिणी की दशा नाजुक है। इसकी वीमारी का कोई इलाज होता नज़र नहीं आता। अठारहों (असंख्य) वैद उपचार के लिए लगे हैं। परन्तु दुःख

बढ़ता जा रहा है और अब वह हृदय को छूने वाला है।" सन्त कवियों के मरीज़ को अपने दुःख का पता है, इस लिए वह वैद को हाथ नहीं दिखाता, न उपचार चाहता है। परन्तु कुलुई समाज का मरीज़ अपनी बीमारी को जानता हुआ भी अनजान है; इलाज करता जाता है, और उसकी बीमारी बढ़ती जाती है। उसकी हालत उर्दू की कहावत की सी है 'दर्द बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' परन्तु वह धैर्य नही छोड़ता—

सौर निभै सौगम, छौड़ू नी देऊ मनाणा।
मेरे एई छाती रै दुखा बै कुण वैद लाणा।

"सारे संगम और तीर्थ स्थान देख लिए। देवता भी मनाया। परन्तु (आराम न आया) अब मेरे इस दिल के दर्द के लिए किस वैद को बुलाऊं (क्योंकि इसका उपचार होने में नहीं आता)।" यह दिल का दर्द है इसका कोई उपचार नहीं। कोई औषधि नहीं। पीड़ा हृदय में हैं और शरीर सूखता जाता है—

घाह लुणनू आली घाहणीए, घाह लूणू की तूली।
हाड़ा रा रौहिरा पिंजर नाका री रौहिरी चूली।

"हे घास काटने वाली युवती तू घास काटती है या तृण। तू स्वयं हड्डी का पिंजर रह गई है। मुंह पर केवल नाक की हड्डी बाकी है।" जिस प्रकार घास के केवल सूखी तिलियां तेरे हाथ लग रही हैं, उसी तरह तू स्वयं भी जुदाई की आग से सूख कर केवल हड्डी का ढांचा रह गई है। मुंह पर कोई मांस नहीं है और नाक की हड्डी निकल आई है। शरीर का सूखना भी स्वाभाविक है क्योंकि विरह में खाना भी अच्छा नहीं लगता—

जूठी शौली रा चिहटू भौकदा भौकदा हीठा।
जबे आई झ़ूरी री सोठणी, खाणा नी लागदा मीठा।

"तेल युक्त लकड़ी की मशाल जलते जलते बुझ गई। जब कभी प्रेमिका की याद आती है, खाना भी अच्छा नहीं लगता।" भरी जवानी में जब प्यार भी पूरे यौवन में हो, प्रेम का टूटना कौन सहन कर सकता है। याद के मारे जीना दूभर हो जाता है, खाना कौन खा सकता है। साधारण खाना तो रहने दो, घी-खिचड़ी भी गले से नीचे नहीं उतरती—

बांढा भी बांढा, केलू री बूटी रा बांढा।
खाणा-बे धीना धीऊ खिचड़ू, जीभी-न हेठ नी जांदा।

मनुष्य की परिस्थितियां भी कितनी निष्ठुर होती हैं। जीवन में न जाने कितनी मजबूरियां आती हैं, और इन मजबूरियों के कारण नव-विवाहित जोड़े को जब जुदा होना पड़ता है तब एक की दशा दूसरे से छिपी नहीं रहती—

बीभे सौरगा बादल निक़ता हौरा ।
आपू न्हौठा फरंगी री नोकरी भ़ूरी डाही जौलदी घौरा ।

"निर्मल आकाश पर हरा बादल छा गया है (अपशकुन) । स्वयं फिरंगी की नौकरी चला गया है और प्रेमिका को जलता हुआ घर रख गया ।" इस प्रदेश के समाज के लिए ऐसी परिस्थिति बड़ी स्वाभाविक है। आदि काल से यहां के सैनिक फौज में भरती होते रहे हैं। पति जब स्वयं नौकरी पर जाता है तो नवविवाहिता की दशा इसी तरह होती है। इसी तरह—

फूल निभू फूलियां, भौर फूलला जौरा ।
लोभी न्हौठा दूर नोकरी, दुखा रा कोटड़ू घौरा ।

"फूल फूलने के बाद झड़ गया है, परन्तु ज़ौरा (जौ का फूल) भर जवानी में है। प्रियतम दूर नौकरी पर चला गया और दु:ख की भरी कोठड़ी घर छोड़ गया है ।" नव-विवाहिता को और शौक भी क्या हो सकता है। उसका पति ही उसका एकमात्र मनोरंजन होता है। उसे भी इस तरह छोड़ कर जाना पड़े तो उसे और किस सहारे की आशा हो सकती है—

नीलीए चीड़ीए, कोल्ह बुणू पाणी रे छोभे ।
लोभी न्हौठा दूरा-पारा बे कुणी रे रौहली लोभे ।

"हे नीली चिड़िया ! तूने पानी के दलदल के किनारे घोंसला बनाया है। प्रेमी दूर पार चला गया है, तू किसके सहारे रहेगी ।" उसे केवल याद का सहारा है ऐसी याद है जो रात-दिन साथ देती है, और इस याद के सिवाय और कुछ शेष नहीं है। और इस याद में तड़फ तड़फ कर वह आवाज देती है—

भलेया माण्हुआ, भलेया जुआना ।
राती नी पौड़दी निंद्र, दिहाड़ी नी रुच्दा खाणा ।

"हे भले मानस ! हे भले जवान ! (तुम कहां हो ? क्या तुम वापिस नहीं आ सकते ?) मुझे न रात को नींद पड़ती है, न दिन को खाना रूचिकर होता है ।" जुदाई की घड़ी भी कितनी नाज़ुक और दुःख भरी घड़ी होती है। अपने प्रियतम को जाता देखकर आंखें भर जाती हैं, गला रुक जाता है :—

हेठे धीरे शहरा, ऊभे मेखली धारा ।
लोभी चौलू दूरा पारा बे, गौल़ लागा भौरिदा म्हारा ।

केवल प्रेयसी का ही गला नहीं भरता प्रेमी का भी तो दिल है। उसे भी जुदाई की घड़ी उतनी ही दु:खदायी है। दिल पर पत्थर रख कर रवाना होता है, परन्तु अपने आप पर कितना काबू कर सकता है :—

जोता रा गाश शौहिया निमू, हौछू-रा गाश नी शौहू।
पीछे फीरिया लागे भालदे, हाजी की संइसा रौहू।

"पहाड़ पर की बारिश रुक गई, पर आंसुओं की वर्षा खत्म नहीं होती। स्वामी! तुम पीछे मुड़-मुड़ कर देख रहे हो। मैं समझती हूं तुम्हें भी मेरी तरह विरह-अग्नि जला रही है। क्योंकि तुम्हारा दिल पीछे रह गया है।" वियोग में याद तो दिन-रात सताती रहती है। परन्तु दिन की अपेक्षा रात को विरह पीड़ा असहनीय होती है। यही कारण है कि नायक के मुख से अनायास पुकार निकलती है :—

जोते री चीड़ीए, कुणी पापीए बलागी।
छके फीरे चीड़ीए घौरावे, रात पौड़दी लागी।

"हे पर्वत की चिड़िया, तुझे किस पापी ने रोक लिया। हे पक्षी, शीघ्र घर लौट, रात पड़ रही है।" प्रियतम की तो यही इच्छा है कि वह अपनी प्रेमिका को हमेशा नज़र के सानने रखे परन्तु जीवन की बिडम्बना देखो जिसे नज़र से दूर रखना असम्भव था, उसी को पर्वत की दूसरी ओर मज़बूरन जाना पड़ता है :—

तौउए बी तौउए घौड़ुए लोहे रे तौउए।
जुण झूरी लोड़ी नजारी पांधे, सौ न्हौठी धारा रे लौउए।

बिछोड़ा केवल स्थान की दूरी और समय की अवधि तक सीमित नहीं होता। यह असीम रूप धारण कर लेता है, जब बिछुड़े साथी के वापिस आने की और पुनः मिलन की कोई आशा नहीं होती। मृत्यु! हां मृत्यु एक ऐसा घातक हत्यारा है जो दो हृदयों को हमेशा के लिए अलग कर देता है। वह एक ऐसी जुदाई देता है कि उसके पुनः मिलने की कोई आशा नहीं होती है। ऐसी जुदाई असहनीय होते हुए भी इसे बरदाशत करना पड़ता है, परन्तु ऐसा वियोग जो दशा करता है उसे कैसे वर्णित किया जा सकता है :—

जूनी बी जूनी फूटे भागे री हीकडू भोनदी जूनी।
याणे बाले-बे मौरना हुआ चीड़ी सो डाले री रूणी।

"जिनके भाग्य फटे हों उनका शोक और कष्ट हृदय-बिदारक होता है। भरी जवानी में मृत्यु हो गई है, और डाली पर बैठी चिड़िया भी रो रही है।" हिन्दी साहित्य में भी विरह-विलाप मिलता है। भौंरे और काग संदेश ले जाते हैं कि विरह-अग्नि में जल रही विरहिणी का धुआं हमें लग रहा है। परन्तु एकान्त शाखा पर बैठी चिड़िया भी टिऊ-टिऊं कर रो रही हो यह केवल कुलुई लोक-कवि की कल्पना है। पक्षी से भी विरहिणी का दुःख सहा नहीं जाता। उसके साथ वह भी दो-आंसू बहाए बिना नहीं रह सकता। पक्षी का सहयोग पुनः देखने योग्य है :—

बालू सूनारा फूली गोई नशोभी।
पिहू-न छूटू पाणी भ़ूरी-न छूटी रा लोभी।

"सोने का बालू और फूली आभूषण बने हैं, परन्तु वे शोभा नहीं दे रहे हैं (प्रेमी की अनुपस्थिति में)। पपीहा से पानी छूट गया है प्रेयसी से प्रेमी छूट गया है।" आभूषणों का कोई मतलब नहीं जब उनकी प्रशंसा न हो रही हो, और न ही आभूषण पहनने का लाभ है जब उन्हें देखने वाला कोई नहीं। शरीर की शोभा अपने लिए नहीं देखने वालों के लिए होती है। सोने के आभूषण साधारण वर्तन हैं जब प्रेमी न हो। पपीहा 'पिया-पिया' करता चिल्लाता रहता है, यद्यपि यह स्थानीय धारणा के अनुसार पानी के लिए तरसता है, परन्तु 'पिया-पिया' में उसके प्रिय के लिए तड़प छिपी है, और वही दशा प्रेयसी की है। प्रियतम की याद हर घड़ी तरसाती रहती है, वह भूले नहीं भूलती :—

बून्हे माहुल, पीछे पोई करेरी।
लोभी भोले-बे हुई मौत, याद किहां बिसरी तेरी।

ऐसी जुदाई का क्या कारण हो सकता है। मुझ से ऐसी क्या खता हो गई होगी जो मुझे इस प्रकार तरसना पड़ रहा है। ऐसी सजा किसी पूर्व भूल के कारण हो रही होगी। अन्यथा इस युग में तो कोई खता नहीं की थी :—

बूटी बी बूटी भूजाल खोड़े री बूटी।
कुणी जुगा रा पाप खोड़ुआ भ़ूरी दिले री छूटी।

"किस जमाने के पाप की सजा मुझे मिल गई है कि दिल की प्रेयसी मुझसे जुदा हो गई है।" विरह की अग्नि साधारण अग्नि नहीं है। यह जीते जी धीरे-धीरे जलाती रहती है। नव विवाहित तरुणियों के लिए पति की अनुपस्थिति अत्यन्त घातक सिद्ध होती है। यदि जवानी विना प्रिय के वितानी पड़े तो जवानी का सौन्दर्य निरर्थक है, उसे तरासती हुई याद समय से पूर्व ही बुढ़ापा ले आती है। इस प्रकार यौवन का व्यतीत होना तरुणी के लिए मरने से कम दुःखद नहीं है। तब प्रिय से दूर बैठी युवती अपने पति को संदेश भेजती है :—

हौरे गेहूं री जौचड़ी, पींउली फिरी री शाई।
छके फिर-ड़े घौरा-बे चोड़ुआ, जुआनी सा निबरी आई।

"गेहूं की फसल हरी है और सरसों में पीले फूल निकल आए हैं। ए पक्षी ! शीघ्र घर लौट, जवानी बीत रही है"। इस दोहे में प्रयुक्त प्रतीकों की ओर ध्यान दिया जाए। भाव स्पष्ट है, जिन प्रेयसियों के नायक साथ हैं, उनका यौवन हरा भरा है ऐसे ही जैसे गेहूं की हरी-भरी खेती आंखों को तरावत देती है। उधर विरहिणी जिसका प्रियतम उसके साथ नहीं है, विरहाग्नि में जल कर पीली होती जा रही जैसे

फूली हुई सरसों की खेती । अतः उसके मुख से अनायास पुकार निकल पड़ती है जैसे कि 'हे मेरे पक्षी (प्रियतम) तुम शीघ्र घर लौटो, जवानी बीती जा रही है;' और जब उसे पत्र आता है कि अभी आना सम्भव नहीं है तो वह पुनः कहला भेजती है—

हौछुए भौरुए टॅंडलू, भौरी भौरुआ फाढ़ा ।
तुसे री सा छौह महीने री नोकरी, महारे नी काटिदा दिहाड़ा ।

"अश्रु से नेत्र भरे हैं, और गिरते हुए आंसुओं से मेरा पल्ला भर गया है । तुम्हारे छः महीने की नौकरी है, मुझे एक दिन काटना कठिन है ।" एक-एक दिन विरहिणी के लिए वर्ष का समय लगता है । उसे चारों ओर अन्धकार लगता है और कोई उसे साहस भी नहीं देता । सखियों के ताने उससे बरदाशत नहीं होते । ओस पड़ोस उसे अच्छा नहीं लगता । उसका साहस टूटता जाता है—

बालू सूना रा नीला-पींउला तेला ।
चौहू पासे हुआ निहारा, कुण धाड़छ देला ।

"सोने के बालू (नाक का आभूषण) में नीले-पीले नग लगे हैं । चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा है और कोई भी ढाढस नहीं बन्धा रहा है ।" सोने के आभूषण भी निरर्थक हैं उन्हें देखने को भी जी नहीं करता । पहनने की तो बात ही क्या ? साहस भी कौन दे सकता है, क्योंकि चिन्ता ही इस तरह की है, जिसको कोई भी दलील दूर नहीं कर सकती । कुल्लू के लामणों में विरह की अग्नि के कई रंगों से उल्लेख मिलते हैं । विरह की अग्नि की लपटें शरीर और हृदय को जला देती है—

माली-रे बागा-न फूल फूली रा गूढ़ा ।
एक दिहाड़ी नी मिली झूरीए, छाती बोणी जोलिया घूड़ा ।

"माली के बाग में गूढ़े रंग का फूल खिल उठा है । एक दिन प्रिया न मिली और (विरह-अग्नि से) छाती जल कर राख हो गई है ।" हंस-हंसिनी का जोड़ा पल भर के लिए भी अलग नहीं होता । यहां प्रेमिका दिन भर का विछोड़ा कैसे सहन कर सकती है । एक दिन के वियोग ने ही विरहिणी को जला दिया है । और यदि विरह का समय अधिक हो तो वियोगिनी की क्या दशा होती है—

लोभी जुआने-रे मुँहड़ू हेरिया, दिहाड़े सी बीती रे बोहू ।
थोड़ा जौलू कौकड़ी कालजा, बोहू छाती रा लोहू ।

"प्रिय का मुख देखे हुए बहुत दिन बीत गए हैं । उसकी विरह अग्नि में हृदय और कलेजा तो कम जला है परन्तु छाती का खून बहुत जला है ।" अर्थात् विरह

की अग्नि ने सब कुछ जला दिया है। और उधर नायक ने नायिका की खोज में सब कुछ छान मारा है, परन्तु उसे कहीं उसका रूप नहीं मिलता—

उथड़ी धारा-न लोमी लबौहड़ रौईए।
छ़ेलू गौभा सेंही चिन्ही झूरिए, कुणी छूँडा-न पोईए।

"ऊंची पर्वत शिखा पर रई (चील) का ऊंचा वृक्ष झूम रहा है। हे प्रिये! मैंने तुझे भेड़ों के झूण्ड में भेड़ और वकरी के वच्चे की तरह ढ़ूंढा। तू ना-मालूम किस रेवड़ में भटक गई है।" विरह में वियोगी कहां-कहां नहीं भटकता। नदी नाले, पर्वत-मैदान, घर-जंगल दर-दर फिर कर सव जगह की खाक छाननी पड़ती है, परन्तु निष्ठुर विधाता विछुड़े हृदयों को मिलने नहीं देता—

एक शाहूरा भेखली धारा-न, दूजा शाहूरा रूपी।
जेबे आई याद लोभीरी, छाती लागी भौकदी लूपी।

"एक ससुराल भेखली गांव में है, और दूसरा रूपी वादी में। जव कभी प्रेमी की याद आती है तो छाती में आग लगती है।" एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकते भटकते हृदय फटने लगता है। ठण्डी हवा में चलते हुए भी हृदय को ठण्डक नहीं मिलती। ठण्डा पानी भी हृदय की प्यास को नहीं बुझाता। घने जगलों का भ्रमण हृदय को शांति नहीं देता—

भूभू रे जोता न घोणी पोई केलूरी बूटी।
केण्ढी छ़ूटी सो रीझ़े री झ़ूरी, आई कौकड़ी फूटी।

"भभू जोत पर दियार के घने वृक्ष शोभा देते हैं। दिल की प्रेमिका विछुड़ गई है और हृदय फटा जा रहा है।" जीवन में पत्नी का सहयोग एकमात्र सहारा होता है। पति को पत्नी और पत्नी को पति का सहारा जीवन के सुख का मुख्य लक्षण है। एक का सहारा दूसरे के लिए वैसा ही है जैसे वुढ़ापे में लरज़ते हुए शरीर के लिए लाठी का सहारा ज़रूरी होता है—

नाला चि़णना डेहरा, धारा चि़णनी कोठी।
कौखे छ़ूटे संगेरे साउगी, कौखे छ़ूटी हौथेरी शोठी।

"नदी के किनारे (नाले में) मकान डाला है। पर्वत शिखा पर कोठी। न जाने साथी कहां छूट गए हैं और कहां हाथ की लाठी गुम हो गई है।" मकान-कोठी और सभी सुख सुविधाओं के होते हुए भी यदि जीवन साथी छूट जाए तो जीवन का लड़खड़ाता कदम मंजिल तक कैसे पहुंच सकता है। यदि यह साथ निष्ठुर मौत के हाथों द्वारा पृथक हो जाए तो उम्मीदों के महल भी गिर जाते हैं। जिन्दगी रहे तो कभी न कभी मिलन की आशा बन्धी रहती है, जीवन ही समाप्त हो जाए तो आशा कैसी—

गेहूं री लागी कूंवली, जौऊरी पीउंली सेरी।
मुएंरी केरी गती सुहारनी, जिन्दे सा एजणा फेरी।

"गेहूं में अभी सिट्टे आए हैं और जौ की फसल पकने के लिए तैयार पीली पड़ गई है। मरे के क्रिया-क्रम होते हैं। जीवित के पुनः आने की उम्मीद बनी रहती है।" यदि जीवन का बेहतरीन साथी बिछुड़ गया हो तो प्राण भी शीघ्र नहीं छूटते—

चाहड़ी चौरले घोरड़–काकड़, जोड़े बराघणू धारा।
कुणी पापीए काटू बौता रा झारटू, शाह रौहू धाउड़ा म्हारा।

साथी का उपयोग मानव समाज तक ही सीमित नहीं है। पशु-पक्षी के समाज में भी एक दूसरे का साथ रहता है। जीवित रहने के लिए साथी का होना अनिवार्य है। घोरड और ककड़ अलग-अलग जाति के पशु होते हुए भी साथ रहते हैं, एक जाति के पशुओं में साथ रहने की प्रवृति स्वाभाविक है। मनुष्य तो सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, साथी के बिना रह ही नहीं सकता। यही भावना उपर्युक्त दोहे में उल्लिखित है। "पर्वत के दामन में चट्टान के साथ-साथ घोरड़ और ककड़ चर रहे हैं और पर्वत शिखा पर एक बाघों का जोड़ा चर रहा है। किस पापी ने मार्ग के किनारे की घनी झाड़ी काट दी। अब हमारा सांस अधूरा रह गया है।" यहां लोक कवि के बिम्ब विधान को देखा जा सकता है। जीवन साथी को यहां 'झारटू' (घनी झाड़ी) कहा गया है। जिस प्रकार मार्ग के किनारे पर घनी झाड़ी थके-मान्दे यात्री को शान्ति और आराम प्रदान करती है, वैसे ही जीवन साथी इस जीवन के लम्बे सफर को सुख से पूर्ण करने में सहायक होता है। यदि मौत का कठोराघात जीवन के लम्बे सफर के साथी को बीच सफर में ही जुदा कर दे तो जीवन यात्रा कैसे पूरी हो सकती है। मरते दम नहीं निकलता साथी के बिना जीने की कोई इच्छा नहीं है क्योंकि साथी के वापिस आने की आशा ही नहीं अन्यथा आशा के कच्चे धागे के सहारे जीवन-नौका चलती रहती है। कारण स्पष्ट है—

सोंझ पौई सोंझणी, नाला खरूहडू बाठा।
फरंगी रे केइदू आए घौरा बे जौआं रा केइदू राठा।

"शाम हो गई है। इसका संकेत नाले में खरुहड़ी पक्षी ने चहचहा कर दे दिया है (खरुहड़ी ऐसा पक्षी है जो पौ-फटने या गोधूलि संध्या के समय ही बोलता है)। फिरंगी (अंग्रेज) के कैदी वापिस घर आ गए हैं। परन्तु यम का कैदी हमेशा के लिए गुम हो गया है।" यहां भी लोक कवि का बिम्ब-कौशल्य देखने योग्य है। सायं से अभिप्राय: जीवन के अन्तिम दिनों से है। बुढ़ापे में जब एक पैर कबर में

होता है तो पूर्व जीवन की घटनाएं आंखों के सामने झांकी के समान एक-एक करके गुजरती हैं। प्रिया की बातें ऐसे ही याद आती हैं जैसे खरुहड़ी पक्षी की चहक कानों में गूंजती है। यदि वियोगी अस्थायी रूप से विछुड़ा हो तो उसके वापिस आने की ऐसी ही आशा वन्धी रहती है जैसे कैदी के कैद काटने के वाद वापिस आने की पूर्ण सम्भावना होती है। परन्तु जो यमराज की कैद में चला गया हो तो उसके आने की किंचित मात्र भी आशा नहीं हो सकती। मृतक को यम का कैदी कहना लोक कवि की अभिव्यक्ति के सामर्थ्य का प्रमाण है। यम के कैदी के अतिरिक्त अन्य वियोगी के मिलने की आशा वनी रहती है। उसके मिलने के प्रयत्न जारी रहते हैं :—

काठे-रे उखला चीणी डाही काउणी कूटी।
हिउंद श्राऊ ठेकेदारा, दे लोभी-बे घौरा-बे छूटी।

"काठ की ओखली में चीणी-और कंगनी (धान की किस्में) कूट रखी हैं। हे ठेकेदार, सर्दी का मौसम आ गया है प्रियतम को घर आने की छुट्टी दे।" यह एक ऐसी स्त्री के हृदय की आवाज है, जिसका पति जंगल के काम पर किसी ठेकेदार के साथ गया है। यहां आजीविका के लिए कठोर परिश्रम का हवाला देखने को मिलता है। एक समय था जव कुल्लू के लोग रोज़ी कमाने के लिए दूर-दूर मज़दूरी करने निकलते थे। ऐसी मजदूरी वे प्राय: जंगल में तार आदि का काम करके कमाते थे। जव पति इस प्रकार कई महीनों तक घर से वाहर रहता है तो पत्नी की दशा दयनीय होती है। विरह में व्याकुल पत्नी को कोई सान्त्वना नहीं देता। तव उसके दिन और रात रोते बीतते हैं :—

काची बोणी सड़का, लागा उठदा धूड़ा।
थोड़ी रुणी बोला बाहुड़ी चाउड़ी, बोहू गोरूरे खूड़ा।

"कच्ची सड़क वनी है जिस पर धूल उड़ रही है। विरहिणी अपने प्रियतम के विछोड़े में घर आंगन में कम रोई है, पशुओं के खुड्डों (शैडों) में अधिक रोती रही है।" विरहिणी के रोने पर भी तो वन्दिश है। वह समाज में रो नहीं सकती। प्रियतम के विछोड़े में रोना लज्जा का कारण है। वह कैसे रो सकती है? प्रथम तो वह रो नहीं सकती, रोए तो कोई सान्त्वना नहीं देता, वल्कि देखने वाले उसकी खिल्ली उड़ाते हैं, उससे मजाक करते हैं, इसलिए रोती है तो कोई वहाना ढूंढ़ना पड़ता है—

कोहड़ी ऊना रा लाहटू, शालरी ऊना री पूणी।
ऊंघ खोंजली मुण्डा-न दाहीरा, लोभी रे हीकटे रूणी।

यूं लगता है कि पति द्वारा दी ऊन को कातते हुए जब पत्नी को ऊन के साथ-साथ पति का ख्याल आता है तो उसे जुदाई की आग जलाने लगती है। ऊन को अपने हाथ में देखती है तो देने वाले की याद आना तो स्वाभाविक ही है। इसीलिए सोचती है "भूरे रंग की ऊन (अभी बाकी) है, और काले रंग की ऊन काती जा रही है। ऊन की पूणी हाथ में है। प्रियतम की याद में आंखें भर रही हैं परन्तु शर्म के मारे रो नहीं सकती अत: सिर दर्द का बहाना बना कर रो रही है। आंसू छमाछम बह रहे हैं, वियोगी की याद में आंखें व्याकुल हैं।" प्रियतम दूर चला गया है अब कब मिलन होगा—

हौरी नगाली रा भौरलू शूकी नगाली री नौदी।
लोभी न्हौठा दूरा देशाबे, एबे सा मिलणा कौधी।

"हरे बांस की टोकरी बनी है, सूखे बांस की नली है। मेरा प्रियतम दूर देश चला गया है। अब कब मिलन होगा।" और उधर प्रेमी की दशा भी कम दयनीय नहीं है। वह भी दूर देश में जाकर प्रेयसी की याद में तड़प रहा है—

पहाड़ा-न जाइरू पाणी रा मौगरू, मदाना-न पाणी रा कुँआं।
झूरी छूटी घौरा आपणे, परदेशा-न हिकटे मुआं।

यहां प्रेमी अपने विचार में पहाड़ और मैदान की दो विचित्रताओं का संकेत करते हुए प्रेमिका की याद में अपनी दशा बताता है "पहाड़ में चश्मे का पानी नाली में बहता है और यहां मैदान में पानी कुओं से खींचना पड़ता है। हे प्रिये, तू घर पर पीछे छूट गई है और मैं तेरी याद में मर रहा हूं।" और एक दूसरे दोहे में तो यहां तक कहा गया है कि प्रेमिका के पीछे रहने पर मेरा सांस भी पीछे रह गया है। मेरा यह बिना सांस का शरीर विदेशों में भटक रहा है :—

चलदे पाणीयां खूलदे जोता रे हिऊंआ।
झूरी छूटी घौरे कुण्ही, शाह छूटू मांडी रे सीऊंआ।

"हे चलते हुए पानी और पिघलते हुए हिम ! क्या तू जानता है मेरी प्रेयसी घर रह गई है और मेरा सांस मंडी की सीमा तक पहुंच कर वहीं छूट गया है। और यह शरीर यहां विदेश में तड़प रहा है।" रात को स्वप्न में प्रेमिका मिलती है तो करवटें बदल-बदल कर रातें काटता हूं :—

गोरे मौथा-न बिंदली सजदी, बशाहरी रंगा रा टोपू।
राती मिली झूरी सुपने, सारा साथरा तोपू।

मेरी प्रेमिका की क्या निशानी है ? "गोरे मुख पर तिलक शोभा देता है और सिर पर उसके बुशहरी टोपी सजी होती है। अब तो विदेश में जब कभी स्वप्न

में उसकी सूरत नज़र आती है तो बिस्तर पर तड़पता रहता हूं।" मेले और त्यौहार मनोरंजन के साधन होते हैं। परन्तु यदि मेले में दिल का आदमी न मिले तो मेला भी सूना-सूना लगता है। विरह में मेला भी सुनसान लगता है। आंखें प्रेमी की खोज में तरसती रहती हैं :—

पोशा माघे री लोमी राती-न, ग्रौग भौकली गेठी।
जाच लागी दूरा-पारा री, माण्हू लोड़ी ग्रापणे भेटी।

"पौष और माघ की लम्बी तथा ठण्डी रात्रि में अंगीठी में आग जल रही है। दूर पार मेला लगा है (परन्तु मेला आनन्द का विषय तभी हो सकता है, जब) अपना प्रेमी साथ हो।" अन्यथा मेले में दिल नहीं लगता :—

भेटी फुलला कुसम, बेउड़ी फुलला कौहू।
सौहा निभी जाच, तेरा सेइंसा रौहू।

ऊपर और नीचे सभी ओर फूल खिले हैं "ऊपर की ओर कुसुम के और नीचे की ओर कौहू फूल खिले हैं। ऐसे वातावरण में मेला स्थान से मेला उठ गया है, परन्तु मुझे अभी तेरी प्रतीक्षा है।" परन्तु मेरी प्रतीक्षा फल नहीं ला रही है। जितनी प्रतीक्षा करती हूं, मिलन की आशा उतनी ही धुंधली पड़ती जाती है। प्रेमी के आने की बात किस-किस से न की होगी, परन्तु उसके आने का कोई आश्वासन नहीं देता। देवता, ज्योतिषी सबसे पूछा गया, परन्तु :—

देउग्रा-देवी-न पूछिया थौकी, थौकी देशा-देशा-न भाली।
फिरी बी लोभी नी मिलू ग्रापणा, बोहू मैं बिपता घाली।

"देवी-देवता सबसे पूछ बैठी हूं। देश विदेश में तलाश करके थक गई हूं। फिर भी प्रियतम कहीं नहीं मिला। कितने ही कष्ट सहन किए हैं।" परन्तु विरहिणी को वियोग से छुटकारा नहीं मिलता। भरपूर जवानी में भी यदि प्रियतम का संयोग प्राप्त न हो तो बुढ़ापा भी समय से पूर्व ही शरीर को घेर लेगा—

फूल फूलू फुलणू भौर फूली चम्बेली।
दिहाड़े गिणे गुठी रे फुलुए, जुआनी निभी सुपने खेली।

"सभी ओर फूल ही फूल खिले हैं चमेली भी पूरे यौवन में फूली है। एक-एक दिन उंगलियों पर गिने हैं और जवानी स्वप्न में खेल कर बीत गई है।" फूलों से भरा वातावरण हमेशा यौवन की व्याकुलता को प्रोत्साहित करता है। यही कारण है पहाड़ी गानों में फूलों के फूलने का हवाला प्रायः आया करता है। यौवन का सौन्दर्य खिले फूल के बौर को चुनौती देता है। परन्तु यदि यौवन के इस सौन्दर्य की कदर करने वाला पास न हो तो जवानी बुढ़ापे का दूसरा नाम

है। यही कारण है कि वियोगिन एक-एक दिन को उंगलियों के निशानों पर गिनती है और लोक कवि की कल्पना में उंगलियों के निशान भी दिन गिनते-गिनते घिस जाते हैं। दिन भर की प्रेमी से मिलने की विचारधारा रात को स्वप्नों को जन्म देती है। और सारी जवानी इन्हीं दिन की विचार-तरंगों और रात के स्वप्नों में बीत जाती है। और जब रात को ख्यालों की दुनियां में मिलन होता है तो दिन प्रायः रोने में बीतता है—

झ़ूरी रा मुँहड़ू, लाल गुलाबे रे फूला।
राती मिली सुपने, दिहाड़ी हौछूरी कुल्हा।

"प्रेयसी का गुलाब जैसा सुन्दर मुखड़ा जब रात को स्वप्न में मिलता है तो दिन को आंसुओं की धारा बहती रहती है।" जरा नींद आई तो स्वप्नों का तांता लगता है, वरना नींद आती कहां है—

लाल गलाबा रे झारटू, बराह फूलले रुखे।
राती लाई काटणी बिण्ही निंदरे, दिहाड़े लाए काटणे दुखे।

"कांटेदार झाड़ी में लाल गुलाब के फूल खिले हैं और बरास के फूल वृक्ष पर फूले हैं। (प्रिय के वियोग में) सारी रात बिना नींद के व्यतीत होती है और सारा दिन दुःख में गुजरता है।"

देऊ रौहला टाल रे पुंधा-न ग्रौग रौहली चूल्हे।
जेबे ग्राई झूरी री सोठणी, चार रस्ते खूले।

अनुराग की मादकता हर प्रकार के नशे से बढ़-चढ़ कर है। जब कभी इसका उन्माद उभर आता है तो कुछ नजर नहीं आता। खाना छूट जाता है। पूजा-पाठ भूल जाता है। "देवता टाले (ऊपर की मंजिल) के किनारे पर पड़ा रहेगा, आग चूल्हे में जली-जलाई रह जाएगी, जब भी प्रेयसी की याद आती है चारों रास्ते खुले होते हैं।" वियोगी चारों ओर भटकता फिरता है और विरह की अग्नि उसे जला कर भस्म बना देती है—

लाड़की झ़ूरी रा जिभड़ू, टिणके ढोला रा पूड़ा।
छाती जौलिया हुई भौसा री ढेरी, कौकड़ी जौलिया धूड़ा।

"लाडली प्रेमिका की जबान ऐसी ही मधुर थी जैसी मधुर ध्वनि देने वाले ढोल के पूड़े (चमड़े) की। उसकी जुदाई पर विरह की अग्नि ने छाती को जला कर भस्म कर दिया है और हृदय का जल कर धूड़ा बन गया है।" जुदाई के कारण दुख नहीं सहन किया जा सकता। बिना रोग के शरीर और मन क्षीण हो जाते हैं। स्पष्टतः कोई बीमारी नहीं है, परन्तु अन्दर ही अन्दर जुदाई का जो घुन लग जाता है वह धीरे-धीरे देह को नष्ट कर देता है—

लाहुल जौता रा गाश, बौह्रदा–बौह्रदा शौहू।
फूल निखड़ू फूलिया, डेंडल् नांखड़ा रौहू।

"लाहूल पर्वत-शृंखला की वर्षा बरसते बरसते थम गयी। फूल गिर गया है फूल करके, डंठल नंगा रह गया है।" जब फूल खिलने के बाद गिर जाता है तो फूल की खाली डाली केवल सूखी लकड़ी है। वह तब तक सुन्दर डाली थी जब तक फूल का संग उसे प्राप्त था। फूल का साथ छूटा उसकी सुन्दरता उसकी स्थिरता समाप्त हो गई। प्रेम की जुदाई का रोग ऐसा है जिसका कोई इलाज नहीं—

झांगीए कूकड़ा कौंरी पांधा–न भूरा।
होर दाह न्हौठी छौशी मीनिया झ़ूरी रा झ़लका बुरा।

"बांग देता मुर्गा, गर्दन पर भूरा है। अन्य बीमारी खत्म हुई है मालिश करके, प्रेम का दाग बुरा है।" प्रेम का मारा कहीं इलाज नहीं ढूंढ सकता। यह तो दरद ही निराला है—

काठा री कुहड़ी, पाणी भ्राटणा डिबे।
होरी रे बैरी खोई गुभ्राइया, झ़ूरी रे बैरी कीबे।

'काठ का कुआं, पानी भरना है डिब्बे से। अन्य का वैर खो-गंवा कर होता है, प्रेम का वैर क्यों है।" इस प्रेम में जब विघ्न पड़ जाता है, विरोध आ जाता है तो फिर वह विरोध और विघ्न दूर नहीं होता—

होछे शिमला साहब, बड़े शिमला मिसी।
सूना-चांदी भ्राणू डोंगिया, छाती डोंगुई न्हीसी।

"छोटा शिमला में साहब और बड़े शिमला में मेम साहिबा। सोना और चांदी में टांका लग गया, छाती में टांका नहीं लग सका।"

हास्य-व्यंग्य

दोहे-लामणों में हास-परिहास की छटा भी देखने योग्य है। वैसे हास्य और व्यंग्य मानव जीवन के मसाले हैं। अथाह परेशानियां और नैराश्य में भी व्यंग्य-विनोद द्वारा मानव हताश घड़ियों को सुखद बना लेता है। वैसे प्रणय के आदान-प्रदान में हास्य-व्यंग्य का पक्ष अधिकतर ताना में देखने में आता है। कोई चरित्र जब आदर्श प्रेम की उच्च शय्या से गिर जाता है तो वह हास्य का विषय तो अवश्य बन जाएगा। रूप-यौवन स्वच्छन्द रूप से गंवाने की वस्तु नहीं है। इसमें संजीदगी और कृपणता आवश्यक है। रूप-यौवन को यदि आकर्षण का अखाड़ा बना दिया जाए तो वह अभिशाप सिद्ध होता है :—

बून्हें धीरे सौहरा पीछे आंगणी गौही।
हौला-कदाला सेंही निबरी झूरी, ढाब नी पाणे-बे रौही।

"नीचे शहर और ऊपर अंगन-गही गांव है। हे रूपवती! तू हल और कुदाल की तरह घिस गई है और अब दाव भी नहीं लग सकता।" इस दोहे में उस स्त्री पर ताना कसा गया है जिसने अपने रूप-यौवन को बेशर्मी से नष्ट किया है। उस का शरीर वैसे ही हो गया है जैसे हल और कुदाल अधिक प्रयोग से घिस जाते हैं, परन्तु हल और कुदाल के लोहे में दूसरे लोहे का योग देकर उसे पुन: उपयोगी बनाया जा सकता है, परन्तु उसके शरीर को अब पुन: निखारा नहीं जा सकता। केवल शरीर के रूप-यौवन पर ही जीवित रहने वाला चरित्र समाज में न केवल हास्य का पात्र ही बनता है, वरन् बदनामी का भी कारण होता है। ऐसा चरित्र जिसने अपने शरीर को लोभ-लालसा का साधन बनाया हो, समाज में मान प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसे जीवन से मरना भला है। ऊपर के दोहे की तरह ही एक दूसरे दोहे में भी कटु-कटाक्ष किया गया है :—

शिले नाला-न बौल़द चौरला भौजी।
नाका पांधे निकता हाड़कू, माण्हू नी टालिया रौजी।

"आच्छादित नाले में चित्रित रंग का बैल चर रहा है। हे निकृष्ट युवती। तेरे

नाक पर केवल हड्डी ही हड्डी रह गई है, अभी प्रेमी तलाश करते-करते तेरी तृष्णा पूरी नहीं हुई है क्या ?" यदि तृष्णा की ही बात है तो इसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। चाहे धन-दौलत, रुतवा-दर्जा, सुख-सम्पन्नता की प्यास हो, या मान-मर्यादा की, यह कभी बुझ नहीं सकती। यदि इस तृष्णा को सीमा के अन्दर न बान्धा गया तो चरित्र हानि तो होगी ही, शरीर का नाश और समाज में मान-भंग भी हो जाएगा। जो चरित्र स्वच्छन्द यौन आचरण में व्यस्त हो, उसका सर्वनाश आवश्यक है। शीघ्र ही वह अपनी भूल का अनुभव कर लेता है, परन्तु तब तक पानी सिर से निकल गया होता है, उसे कौन बचा सकता है :—

होछ़ा बंदूकड़ू, शेर मुखीए कुन्दा।
दसा बराघे री बौकरी, तेरा नी पौहरा हुंदा।

"छोटी सी बन्दूक का कुन्दा शेरमुखी है। जिस भेड़ के दसों भेड़िए शिकार कर रहे हों, उसका पहरा नहीं किया जा सकता।" पहरा नहीं किया जा सकता, हां संकेत किया जा सकता है, समझने वाला समझ जाए :—

उथड़ी कोठी-न फेर फिरदी तीरी।
छ़के केरी भ़ूरीए बौसना, चेके-न टूम्बली फीरी।

"ऊंची कोठी में चारों ओर ताकियां भरी हैं। हे प्रेयसी ! शीघ्र घर तलाश कर, कमर झुकती जा रही है।" इन दोहों में ताना और व्यंग्य के साथ-साथ आदर्श प्रेम तथा एकनिष्ट प्रेम की भावना को जागृत किया गया है।

प्रेम की उच्छृंखलता के अतिरिक्त कुल्लू के दोहे लामणों में अन्य प्रकार के व्यंग्यों के भी उदाहरण मिलते हैं। एक दोहे में उस विद्यार्थी की खिल्ली उड़ाई गई है जिसने आवारागर्दी के कारण अपनी पढ़ाई नष्ट की है :—

कोना पीछे पाऊ फूला रा डोल्हरू, गौल़ा बुन्हा-बे हारा।
घौरा हारे हुआ रिड़कणे-बे, पढ़ाई-न पाऊ खसारा।

"कान के पीछे फूल लटका कर तथा गले में हार डाल कर घर-गांव में आवारा-गरदी करने को मिल गई, फलस्वरूप पढ़ाई में घाटा डाल दिया है।" इस बात का रहस्य तब खुला जब किसी ने विद्यार्थी महोदय को कोई पत्र पढ़ कर सुनाने के लिए कहा और उससे पढ़ा न गया :—

हौथे भौरू मसाइण, कौछ़ा हेठीए रेटू।
ऐसा सेभ काला अखर, कागज किभीबे शेटू।

"हाथ में मसायण (धागे बटने की तकली) और बगल में अट्टी दबाई है। यह सब काला अक्षर है। कागज क्यों फैंक रहे हो ?" इस तरह के व्यंग्यों में ताने भी हैं

जो प्रेमी-प्रेमिका के रूप में भारी अन्तर के कारण होते हैं :—

झांगीए कुकड़ा कौरी पांधे-न रौता।
ब्याहू की जोड़ू तिन्हारी खाणीए, लूणा पिशणा रा बौता।

"वांग देता हुआ मुर्गा गर्दन पर भूरा है। हे युवती ! तूने पति ऐसा तलाश किया है जो नमक पीसने के पत्थर की तरह है।" यहां युवती तो सुन्दर है परन्तु पति देव गोल-मटोल बेडौल शरीर के हैं तभी उसे गोल पत्थर बताया गया है। अब इसके उत्तर में जो कुछ कहा गया है उसकी ओर ध्यान दीजिए :—

सेऊ ढालू रौशीए, छेत ज़रीबीए नापू।
होरी-रे डाहणे नाऊंचे-पाऊंचे, मेंढकू सेंही सा आपू।

"पुल को रस्सी से और खेत को ज़रीब से मापा गया है। (अरे मूर्ख) दूसरों के नाम-उपनाम रखता है, स्वयं तू मेंढक की तरह है।" इसी तरह जब एक की प्रेमिका का दूसरे की प्रेमिका से मुकाबला होने लगा तो कहा गया है :

शमशी बाल्हा रे छेत पौधरे, माहुल पीछे री झीड़ी।
तेरी झूरी सा चाभड़ा मेंढका, मेरी झूरी सा सूने री चीड़ी।

"शमशी में समतल खेत हैं, माहुल के पीछे झाड़ियां। तेरी प्रेयसी दलदल का मेंढक है और मेरी प्रेमिका सोने की चिड़िया है।" कोई युवक अपने आप को सुन्दर समझ कर बड़ा दिखावा करता है तो उस पर भी ताना कसा गया है :—

चित बितरे जाचे-रे टौल्हे, नुग्राले सी डांहदे निधू।
बड़ा मौत ड़े घाहिंदा तिन्हां रे खाणेया, तू सा जेंडा कठौहल पिद्दू।

"मेले पर तो चित्रित कपड़े पहने जाते हैं और ऊन के मोटे कपड़े साधारण दिनों के लिए हैं। अरे मूर्ख ! तू बहुत अभिमान न कर तू पिद्दू की तरह है।" यदि किसी युवती ने किसी युवक के प्यार को ठुकरा दिया हो, तो उस पर भी कटाक्ष किया जाता है :—

भेड़ा चारी पुहालुए, चारी कुम्बलू काथी।
लोभी रामा-बे केरू नाहिंदा, आपू नी शोभली आथी।

"पुहाल ने भेड़ें चराईं, और काथी झाड़ी की कोंपलें चरा दीं। तूने प्रेमी के प्यार को स्वीकार करने से इन्कार किया, तू स्वयं भी तो सुन्दर नहीं है।" इसी तरह दिखावा करने वाले पर एक अन्य दोहे में ताना देखने योग्य है :—

सूट-बूट नांगे तालुए, कौंधे पाऊ कोटलू चीठा।
ना घौरा खाणा-लाणा बे, ना जवानी रा नीठा।

'सूट-बूट पहन कर नंगा सिर रखे हुए काला कोट कन्धे पर धरा हुआ है। (परन्तु यह दिखावा किस बात का। सभी जानते हैं कि) न तेरे घर में खाने पहनने को है न तू ज़बान का मीठा है।" इन दोहों के हास-परिहास का विषय प्राय: दिखावा करने वाले या शेखी हांकने वालों का व्यक्तित्व रहा है। इनमें कल्पना की अपेक्षा वास्तविकता अधिक लक्षित हुई है। फेर-घेर में न जाकर लोक कवि सीधे सादे शब्दों में ताना मारता है। किसी को अपने रूप-यौवन पर अभिमान था, और तब उसने किसी युवती के विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जब रूप-यौवन ढल गया तो चक्कर मारने लगा। तभी कहा गया है—

होरी भेड़ा-बे बोन–मोहरू, दुबली भेड़ा-बे कौहू।
आघे शोटी छानी फड़ाकिया, एबे की सेइंसा रौहू।

इस दोहे में प्रथम पंक्ति भी बड़ी अनुकूल बन पाई है। प्रतीक के कारण समस्त दोहा कटाक्ष का सुन्दर उदाहरण है। "अन्य-भेड़ों को तो बन-मोहरू मोटे पत्तों का घास दिया जाता है। जो दुबली भेड़ है (उससे मोटा घास नहीं खाया जाता) उसे नर्म कौहू घास पर पालना पड़ता है। क्यों विदूषित ? पहले तो छान-पछोर कर फैंक दिया, अब पुन: आ गए हो, क्या फिकर पड़ गई ?" अब तो तू भी वह नही रहा जो पहले था—

घंघेरी झीउणा, छापरा पांघला कौदू।
आघे थी तू तहसीला रा मुन्शी, एबे सड़का पोरला गौधू।

"घंघेरी (कद्दू की किस्म) लकड़ी के सम्पालन पर है और कद्दू छप्पर पर। पहले तू तहसील का मुन्शी था, अब सड़क पर चलता गधा है।" इसी तरह एक दूसरे दोहे का व्यंग्य भी है—

चरान केरू तिन्हां-रे खाणेयां, जेंडा तौछण तौछू।
आघे थी तू अफसर, एबे खूड़ा रा बौछू।

लगता है यह किसी अनजान कारीगर के प्रति कटाक्ष है जो पहले लिखा-पढ़ी का काम करता था, परन्तु जब उसमें सफलता न मिली तो मिस्त्री का काम शुरु किया। परन्तु यहां भी अपनी नालायकी का सबूत दिया। तभी तो कहा गया है "हे कम्बखत, चरान (चीरने का काम) कैसा किया है, छील-छील कर लकड़ी खराब कर दी है। पहले तू बड़ा अफसर कहलाता था, अब तो गौशाला का बछड़ा है।" जो पहले नखरे करता हैं और बाद में तरले मारता है, उसके प्रति एक और ताना देखिए—

चीठी ऊना–री तौकली, शेत ऊना री कीरी।
आघे केरे नखरे तिन्हारे खाणेया लागा सोचदा भीरी।

"काली ऊन की तकर्ली और श्वेत रंग की कीरी है। पहले तो मूर्ख तूने नखरे किए अव क्या सोचने वैठ गया है।" अव तो हम भी तुम्हें जान गए हैं कि तुम कितने पानी में हो। अव तो तभी तुम्हारी वात सुनेंगे जव हमारे पैर वन्दोगे—

फेंटी बाल्हा री कोणक, रोट घोटली आरी।
तेबे सराहनू तिन्हा रे खाणेयां,जोध बोंदला म्हारी।

"वाल्ह इलाके की कणक के आटे के पेड़े गोल-मटोल वनते हैं। तभी तेरी प्रशंसा करूंगी, जव तू हमारे पैर वन्देगा।" कभी-कभी शारीरिक सौन्दर्य की कमी का भी वर्णन मिलता है—

सोमसी बाल्हा-न, मौल् चुघणा पोहे।
होर थी शोभली, दोंद शोशले गोए।

"समशी वाल्ह में गोवर उठाना पड़ा है। और तो तू सुन्दर थी, परन्तु दांत छिदरे हैं।" इसी तरह—

घाह लुणनू श्राली घाहणीए, घाह शोटणा पासे।
दूरा-न थी हेरनी शोभली, भेटी नी बेशिदा बासे।

"हे घास काटने वाली, घास इधर उधर फेंक दे। यूं तो दूर से देखने में तू वड़ी सुन्दर है परन्तु वदवू के कारण तेरे पास वैठा नहीं जा सकता।" कृषि प्रधान समाज की अपनी मान्यताएं हैं। उसमें कठोर परिश्रम अपेक्षित है, और जो ऐसा परिश्रम नहीं करता वह समाज में हंसी और मजाक का पात्र वनता है। तभी तो एक लोकोक्ति में भी कहा गया है 'कुत्ता हौल झींडदा ता बौल्द की झीवे लाणा" अर्थात यदि कुत्ता हल जोत लेता तो वैल की क्या जरूरत थी। यह तव कहा जाता है जव किसी आलसी व्यक्ति को दुतकारना हो। कारण स्पष्ट है जो व्यक्ति कृषि का श्रम प्रधान काम नहीं कर सकता, वह जीवन सुखी नहीं वना सकता, वल्कि साधन होते हुए भी निर्धनता उसे जकड़ लेती है। ऐसा व्यक्ति हास्य और व्यंग्य का पात्र तो वनेगा ही—

जूटू झालर उम्ब—सुम्बली सिन्धा।
होरी लोका-रे चितरे-चाधरू, पूइदू यारे-रे नोचली खिन्दा।

"परांदा जालीदार और वाल उल्टे-सीधे संवारे हैं। और लोगों के चित्रित पट्टू और चादरें परन्तु पूइद वालों की खिन्दें नाच रही हैं।" आलसी व्यक्ति का इस दोहे में सुन्दर मज़ाक है। जो अपनी तंद्रा, आलस्य और सुस्ती के कारण अपने साधनों का लाभ नहीं उटा सकता, वह निर्धनता का भागी तो होगा ही, समाज भी उस पर हंसेगा। इसी तरह नव-विवाहित जो लाड-प्यार में पली हो ससुराल में आकर प्रायः इन कटाक्षों का शिकार होती है :—

गाई मालटी-शालटी, बौछी रा नाऊं किबिन्दी।
शाहुरा नी थी घालिदा, लागी पेउके एजिया जिन्दी।

"गौ मालटी-शालटी (भूरे रंग की जिस के माथे पर सफेद दाग हो) और बछड़ी का नाम कविन्दी है। ससुराल में काम नहीं किया जा सकता, इसलिए मायके आकर जी रही है।"

इन कटाक्षों और तानों में एक श्रेणी उनकी है, जो अनमेल विवाह से सम्बन्धित हैं। युवती सुन्दर हो परन्तु युवक सुन्दर न हो तो पत्नी को ताना दिया जाता है। पति सुन्दर है, परन्तु पत्नी असुन्दर तो पति को ऐसे तानों का शिकार होना पड़ता है :—

धारा बागन जोतड़ू पांधे उबड़ खाबड़ जोहां।
ब्याहू की जोड़ू तिन्हारी खाणीएं चिकरी मुछ्दा मेहां।

"धारा बागन गांव पर्वत पर ऊबड़-खाबड़ सा है। अरी नखरीली ! पति तो ऐसा मिला हैं जैसे कीचड़ में रहने वाला भैंसा।" अर्थात् एक तो ससुराल का गांव ही ऊंची-नीची भूमि वाला है और साथ ही पतिदेव भी भैंसे से कम बेडौल नहीं है। उक्ति का मज़ा और अधिक हो जाता है क्योंकि स्वयं बड़े नखरेबाज़ है। इसी तरह :—

उथड़े जोता धारा-पौधरा, जोड़ा बराघणी सुही।
ब्याहू सा जेंढा ढौगारा बान्दर, आपू डाला री कुही।

"ऊंचे पर्वत शिखा के समतल स्थान पर दो बाघनियां प्रसूत हुई हैं। पति जंगल का बन्दर और स्वयं (पत्नी) शाखा पर कोयल है।" एक दूसरे दोहे में दोनों पति-पत्नी को किस रूप में दिखाया गया है :—

जौउआ रा कीशरा, गेहूं सा कौंला गूला।
घौर की बौसू तिन्हारी खाणीए, जौंधे री चूटी-री-पूला।

"जौ का कांटेदार कीश और गेहूं का नर्म दाना होता है। क्या ही अच्छा घर ढूंढा है, जोड़ा ऐसा है जैसे टूटी हुई पूलें अर्थात् घास की जूतियां। इसी तरह अनमेल जोड़े पर एक और ताना देखिए : —

बाल्हा-री कोणक, मूछी मूछीया लेगी।
लाड़ी सा पीउंली-झीउंली, होर बेढ़ा रा नेगी।

"वाल्ह (स्थान) की कणक गूंध-गूंध कर भी गीली रहती है। पत्नी मैली कुचैली रखी है, स्वयं गांव का नेगी (ज़ैलदार) है।" इस ताने को सुनकर नेगी ने अपनी पुरानी प्रेमिका को त्याग दिया और दिल कहीं और जगह लगा दिया।

परन्तु प्रेम में यह सौदा-बाजी कैसी ? यदि प्रेम सच-मुच प्रेम नहीं है तो वह स्थायी नहीं रह सकता। दूसरे स्थान का प्रेम भी इस कमज़ोरी को समझ जाता है तो किनाराकशी करता है, तब दूसरा ताना सुनिए—

सूना री सीउण, सौर्गा भेजणी सोइया।
बोणे री झ़ूरिए मारू मरोड़का, घौरा री बेशिरा खोइया।

'सोने की सूई, स्वर्ग भेजेंगे सिला कर। वन (दूर) की प्रेमिका ने किनाराकशी की, घर की (प्रेमिका को) खो बैठा है।' प्रतिकूल कथन द्वारा भी हास्य का कारण बनता है। ऐसी ही बात इस दोहे में है—

केलू रे बूटड़ुआ, लोमे केरने रूमे।
छोकरे शोभले लौगा रे नाला रे, लूण शोभला गूमे।

"देवदार के वृक्ष के लम्बे-लम्बे करेंगे टुकड़े। जवान सुन्दर है लग के नाला के, नमक सुन्दर है गूमा का।" चाहे लग के युवक सुन्दर हो या न हो, परन्तु गूमा खान का नमक तो काला है, काठा नमक। कहां काला असुन्दर गूमा का नमक और उसकी तुलना है लग के युवकों से। क्या सच-मुच उनकी सुन्दरता का वर्णन है, या ताना में उन्हें काले नमक से मुशाबत दी है।

आशा–निराशा

जीवन आशा और निराशा का ताना-बाना है। जीवन में कभी आशा के पुल बांधे जाते हैं और कभी उसमें निराशा के काले बादल छा जाते हैं। इन्हीं आशा और निराशा की तरंगों में जीवन की डगमगाती नाव तट की तलाश में भटकती फिरती है। कभी आशा की चिंगारी फूटती है तो मुर्दे दिल को जीवन में प्राप्ति की इच्छा सारभूत होने लगती है, तभी निराशा के उमड़ते बादल इच्छा की ज्वाला को तुरन्त बुझा देते हैं। आशा और निराशा मानव जीवन-यान के दो पक्ष इसे उत्तरोत्तर खेंचे जाते हैं :—

फूल निभे फुलिया, भौर फुलला डोला।
डालीए बूझ़ फूलना-फौलना, काल बूझ़ मौरना हौला।

"सभी फूल खिलने-फूलने के बाद खत्म हो गए हैं, परन्तु डोले का फूल पूरी बहार में है। शाखा फलना और फूलना चाहती है परन्तु 'काल' सोचता है, सम्भवतः मरना होगा।" फूल खिलता है, फल आते हैं, कुछ गिरते हैं और कुछ पक कर खत्म होते हैं। डाली और वृक्ष को फिर फल-फूल उगने की आशा रहती है, परन्तु आशा के साथ अस्तित्व के मिटने का शाश्वत भय हमेशा साथ रहता है। हर प्राणी का यही दौर जन्म, बचपन, यौवन और वृद्धावस्था और नश्वरता और फिर वही चकर। हंसता-खेलता चेहरा मुरझाता, मिटता जाता है, परन्तु फिर हसने की आशा लिए रहता है—

दोथके हुण्डदे पाखले माण्हुआं, सोंझके पुजला कौखे।
जाचू न्हौठे हौसी खेलिया, सौह रौही देउआ री औखे।

"हे सवेरे ही रवाना हुए अजनबी, शाम को कहां पहुंचना है। मेले के जाचू (मेला देखने वाले) शाम को हंस खेल कर (अपने अपने घर) चले गए हैं, परन्तु यह सौह)देवते का स्थान जहां मेला लगता है) अब सुनसान यहीं-का-यहीं पड़ा है।" यह

संसार मेला-स्थान है। यहां तरह-तरह के यात्री आते हैं। हंसते खेलते, रंगरलियां मनाते चले जाते हैं, परन्तु यह संसार फिर वैसे का वैसा है, सुनसान होता है ज़रूर परन्तु कुछ समय के लिए फिर भरता है। उर्दू शायर ने कितना सुन्दर कहा है—

न जाने यह दुनियां जलवा-गाहे नाज़ है किसकी,
हज़ारों उठ गए, लेकिन रौनक वही है महफिल की।

लाखों आए लाखों गए न रौनक घटती है, न अभाव अखरता है। हर बार नई आशा, नई आकांक्षा, नई उम्मीद, नई रौनक की अभिलाषा—

फूला चुँघदी रात, जोथ चनण घीरी।
कौधी एणा साजा शौइरी, होणा मिलण भीरी।

"फूल चुनने योग्य रात्रि (निर्मल पूर्णमासी की रात) चन्द्रमा घिरने वाला है। (तभी याद आती है कि) वह शैरी सग्रांत का दिन कब आएगा जब पुनः मिलन और मनोरंजन होगा।" और जब शैरी का दिन आ भी जाए परन्तु वह आशा पूरी न हुई तो निराशा का पहाड़ टूट पड़ता है—

कुलू मोंझे गड़सा, मांडी मोंझे टकोली।
फूल निभरू फुलिया, डेंढलू हेरिया रोली।

"कुल्लू में गड़सा और मण्डी में टकोली गांव पड़ते हैं। फूल मुरझा कर गिर गया है, अब डण्ठल देख कर रोना आता है।" और यह निराशा इस हद तक पहुंचती है कि हताश होकर तब मिलने की आशा की जाती है जब प्राण निकल जाएं—

साजा माघारा, खाऊ पछौउता बौड़ा।
तौधी केरी झूरना लोभीया, जौधी खौला ताढ़िला मौड़ा।

"माघी की सक्रान्ति में अन्तिम बौड़ा (भल्ला) खाया। प्रिये उस दिन प्यार करना जिस दिन आंगन में अर्थी निकल जाएगी। इसी तरह जब निराशा चरम-सीमा तक पहुंचती है, तो कठोर शब्दों का प्रयोग होता है -

उथड़ी धारा—न हौरा शेगल रोहू।
दूर-दूर होंड साथिया, नेड़ पियारीला लोहू।

"ऊंची पर्वत शिखा पर हरा शेगल (एक वृक्ष विशेष) बोया है। हे साथी दूर-दूर ही चल, शायद (तू सोचता है) निकट आने से लहू मिश्रित हो जाएगा।" निराशा का बड़ा कारण अविश्वास है। जब कभी किसी पर से विश्वास उठ जाता है तो उससे प्रत्याशित आशा कठोर निराशा में बदल जाती है। अविश्वास में धैर्य कैसे हो सकता है—

शोभ्मा निकती बादली, सोंगे निकती बीजी।
की बेइर पौऊ लोभीया, दिल न्हीसा दूही रा धीजी।

"शोझा पर्वत के ऊपर वादल छा गया है साथ विजली चमक रही है। हे प्रिय, क्या वैर पड़ गया है कि दोनों के दिल को निश्चय नहीं आ रहा है।" दिल को यकीन नहीं आ रहा है, इसका कुछ कारण ज़रूर है और वह यह कि—

शोभ्मा निकती बादली, सोंगे निकती बीजी।
तेरी एसा हौसदी खाखीए, मेरी न्हीसी कौकड़ी धीजी।

"शोझा पर्वत के ऊपर वादल छा गया है साथ विजली चमक रही है। तेरे इस हंसते हुए मुँह पर विश्वास नहीं आ रहा है।" ना-मालूम इस हंसी में कोई शरारत छुपी हो। क्योंकि पहले भी तेरी नीयत ने धोखा दिया है। नीयत बदलने से मुझे जो हानि हुई है उसके कारण अव निराशा स्वाभाविक है—

हिऊंम्रारा लागा बरुहरु, श्रौग भौकली चूल्है।
तेरी रीती हेरिया भूलू, देश थी जीणे बे खुल्है।

"वर्फ छमाछम वरस रही है और चूल्हे में आग जल रही है। तेरा स्वभाव देख कर भूल गया हूं, अन्यथा जीने के लिए और भी देश अधिक हैं।" चूंकि धोखा खाया है, इसलिए इसके निराकरण के लिए तुम से दूर रह कर तुम्हारे दिल को दुखाते रहेंगे :—

धारा बेढ़ा-न खोखण, डुघे नाला-न रेरी।
सेरी हुण्डनू श्रापणे, छाती जालनू तेरी।

"धारा वेढ़ इलाके में खोखण और गहरे नाले में रेरी (गांव) हैं। मैं अपने खेतों में चलता रहूंगा परन्तु छाती तुम्हारी जलती रहेगी।" निराशा का कई बार कोई कारण नहीं होता, भ्रम-भ्रांति के कारण ही आशा प्रायः निराशा को जन्म देती है। तभी तो दोहे में पूछा गया है कि प्यार करते-करते क्या कारण है तुम्हें ईर्ष्या घेरे हुए है :—

छोटकी काइलीए लोमी लबौहड़ रौइए।
भ्रूरदे-झूरदे मेरी भ्रूरीए, तौबे की हीरख पौइए।

निराशा में मनुष्य अपने आपको वेसहारा और वेवस समझता है। तव उसे किसी ओर कोई सहायक नज़र नहीं आता। यही निराशा की विडम्बना है, अन्यथा ऐसा होना सम्भव नहीं है कि समाज में हर कोई उसके प्रति दुर्भावना लिए हो। वास्तव में अपने उद्देश्य में असफलता के कारण निराशा में घिरा व्यक्ति ऐसा सोचने पर विवश हो जाता है :—

नीली चिड़ीए बेठी ठाण्डी नौई रे चोभे।
घौरे-रे हुए बेइरी, उठनू कौसरे लोभे।

"ए नीली चिड़िया, तू नदी के किनारे ठण्डे स्थान पर वैठी है। मेरे घर के ही जब वैरी हुए हों तो किसके सहारे खड़ा उठूं।" घर वालों को ही शत्रु कहना निराशा की अनोखी अभिव्यक्ति है। घर एक ऐसा स्थान है जो दुःख और सुख सभी परिस्थितियों में अपना है। हर हालत में रहने, उठने, वैठने, सोचने काम करने के लिए एक मात्र स्थान है जिसे मानव छोड़ नहीं सकता। इसके सदस्यों को शत्रु तभी कहा जा सकता है जब मानव जीवन की आशाओं को तिलांजलि दे वैठा हो। जब घर के प्रति यह भावना जागृत हो तो वाहर से क्या आशा की जा सकती है :—

भेड़ लशाउट नी चौरदो काथी।
घौरा नी रीझा रा टबर, बोणा नी संघा रा साथी।

"भेड़ लशाउट (जो एक जगह टिक कर चरने वाली न हो वरन् अच्छे घास की आशा में आगे ही निकलती हो) है, काथी झाड़ी नहीं खाती। घर में विश्वास का सदस्य नहीं है और वाहर संग का साथी नहीं है।" यहां लशाउट भेड़ का उदाहरण उपयुक्त है। निराशा का एक कारण असंतुष्टि है। जब मनुष्य किसी भी हालत में संतुष्ट न हो तो वह किसी न किसी दिन निराशा का शिकार हो जाता है। तब वह न घर में सम्बन्धी ढूंढ सकता है न वाहर साथी की आशा करता है। तब वह अपने आपको चारों ओर से घिरा पाता है, ऐसे ही जैसे एक वेल वृक्ष को चारों ओर से ढक देती है :—

सरग मेढ़ू काले बादले, रीउण मेढ़ू शवाले।
लूड़ीए मेढ़ू बौतारा तालरू, झूरी मेढ़ी दुःखे जंजाले।

यह लोक कवि की अत्यन्त सुन्दर उक्ति है। सारा वातावरण एक ही परिस्थिति का परिचायक है और उस सब में व्यक्ति का उदाहरण सर्वोपरि है। "आकाश को काले वादलों ने ढक दिया है। रीउण (लकड़ी या पत्थर का वड़ा टब जिसमें कपड़े धोए जाते हैं) पानी-घास से ढक गया है। लता ने मार्ग के तरु को ढक दिया है और नायिका को दुःख और जंजाल ने घेर लिया है।" ऐसे वातावरण में आशा की किरण भी मनुष्य के हृदय में स्थान प्राप्त नहीं कर सकती। जीवन एक अमूल्य वस्तु है। करोड़ों जन्म लेने के वाद मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। जान एक ऐसी चीज है जिसे हर कोई हर हालत में सुरक्षित रखना चाहता है। कोई इसे गंवाना नहीं चाहता। फिर भी समाज में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जहां मनुष्य आत्म-हत्या जैसे घृणित उपायों का सहारा लेता है। ऐसे घृणित कुकर्मों के

पीछे कोई कारण नहीं है, सिवाय निराशा के। जब निराशा मनुष्य पर काबू पाती है, तब उसे यही अन्तिम उपाय नज़र आता है :—

होर फूल निभरे फुलिया, भौर फूलला आरू।
भौर ज़ुआनी-न लोड़ी मौत, हौथ लोड़ी हौथ पकारू।

"सभी फूल मुरझा कर समाप्त हो गए हैं, आरू-वृक्ष यौवन पर फूला है। (मुझे) पूरी जवानी में मृत्यु प्राप्त हो, ताकि लोग हाथ मल-मल कर पुकारते रहें।" निराशा में डूबे व्यक्ति की इस प्रकार कई प्रतिक्रियाएं लक्षित होती हैं :—

धारा चौरला काकड़, चाहड़ी चौरला वीणा।
एक एज़ा-सा मना-न, पाणी नी थी देशा-रा पीणा।

"पर्वत-शिखा पर ककड़ और चट्टानों पर मृग चरेगा। दिल में ऐसा ख्याल आता है कि इस देश का पानी भी न पिया जाए।" तब वह मरना चाहता है। आत्म-हत्या की तलाश करता है। क्या किया जाए :—

बूटे-झीटे बोंडै गिणी-गिणाइया, छेत बोंडणे बौगे।
सेभीए शोटू छानी-फड़ाकिया, नौई देनू की ढौगे।

"वृक्ष गिन-गिन कर बांटे गए, खेत सीमा डाल कर बांटे गए। सब ने छान-उड़ान कर फैंक दिया, नदी में डूब मरूं या पर्वत चोटी से गिर कर मर जाऊं।" निराशा का एक कारण विश्वास का उठ जाना है। जब धैर्य नहीं रहता तो निराशा इन्सान को दबोच लेती है :—

जोथ निकती चनण, औढ़ा-बौढ़ा न छीजी।
ज़ानी रोंडा रा हुआ कोयला, दस न्हीसी दुनिया धीजी।

"प्रकाशमान चन्द्रमा निकला है परन्तु इधर-उधर से पूरा नहीं है। मेरी इस बदकिस्मत जान का जल कर कोयला हो गया है, परन्तु इस दुनियां को यकीन नहीं आता।" बल्कि उल्टा मुझ पर ही लांछन लगाया जाता है :—

ओरे धीरे लौगा रा ठेलरू, पारे धीरे कन्होरा।
खाऊ पीऊ नी कौसीरा चिन्धिए निकमा न्होरा।

"इधर लग का टीला है और उधर कन्होरा स्थान। किसी का खाया-पिया नहीं है, फजूल का दोष लगाया जा रहा है।" यदि भूल-चूक हुई होती और तब लांछन लगाया जाता तो दुःख न होता। बिना कसूर के दोष लगने से दुःख तो होगा ही और उससे मायूसी बढ़ेगी ही। तब वह इस स्थान को छोड़ कर दूर जाना चाहता है जहां उसे जानने वाला कोई न हो, परन्तु यहां भी सीमाएं हैं, विवशताएं हैं :—

खाई पतौहरी खाऊ औधला सीड़ू ।
दूरा जाणा थी पाखले देशा-वे पांखा गोऊ नांहिंदा चीड़ू ।

"दोपहर के खाने में केवल आधा सिड्डू खाने को मिला है । दिल करता है उड़ कर नितान्त अजनवी देश को जाऊं, परन्तु अफसोस मैं विना पंख का पक्षी हूं ।" मातृ-भूमि को कौन छोड़ना चाहता है । जिस भूमि ने जन्म दिया है वह जान से प्यारी होती है । और कुल्लू जैसी सुन्दर धरा जिसे देव-भूमि कहते हैं, कुल्लू निवासियों की तो गौरव-भूमि है । संसार भर के लोग इसकी प्रशंसा करते हैं, परन्तु मायूस, विवश तथा निराश हृदय इसे भी छोड़ कर जाना चाहता है । परन्तु खुशी से नहीं, मजवूर होकर । और उसे यह मजवूरी अत्यन्त दुःखदायक लगती है :—

औधी राती रा सुपना भियांदी राती रा उलू ।
जाणा पौऊ औजा दूरा देशा-वे, भीरी नी भालिना कूलू ।

"आधी रात को स्वप्न देखा, सवेरा होते ही उल्लू की पुकार सुनी (अपशकुन) आज मुझे घर छोड़ कर दूर देश जाना पड़ रहा है । अव पुनः कुल्लू देखना नसीव न होगा ।" इस मजवूरी में मुझे जो दुःख हो रहा है, उसका किसी को भी एहसास नहीं है :—

नी हेरिणा कुलू रा देश, नी हेरिणा जगत सुखा ।
कुण बुझला भूख–शोख, कुण बुझला छाती रे दुखा ।

एक वार यह प्रिय देश छूट गया तो "न कुल्लू पुनः देखना मिलेगा, न ही जगत सुख गांव । कौन मेरी भूख-प्यास को समझ सकता है, कौन मेरे दिल के दुःख को जानता है ।" असफलता अपने आप नहीं आती । न निराशा एक घड़ी की देन है । असफलता के कारण धीरे-धीरे बढ़ते हैं, निराशा उनमें जलती का काम करती है । जव मनुष्य अपने कठोरता से अपनाए नियमों और असूलों को छोड़ देता है तभी वह अपने कर्मों से गिरता है—

लान्हीएं चीड़ीए कोल्ह बूणू सेऊए–रे थूहे ।
बौदी नी लाणी कौसी होरी बै कारी-न भूली-रे दूहे ।

"हे लघु पक्षी, तूने अपना घोंसला पुल के स्तम्भ पर वनाया है । किसी को दोष नहीं लगाना है, हम दोनों अपने नियम को भूल गए हैं ।" मज़वूरी के और भी कई कारण हैं, जो निराशा को उकसाते हैं । न चाहते हुए भी विवशतः घटनाएं पेश आती है—

झांगीया कुकड़ा कौंउरी पांधे-न रौता ।
जुण झूरी नी थी छुंगणी, सो मेली सोंगड़ी बौता ।

"बांग देने वाला मुर्गा गले पर भूरा है। जिस नायिका से मैं छूना भी नहीं चाहता था वह तंग रास्ते पर मिल गई।" निराशा में कोई भी कार्य पूरे दिल से नहीं होता। यही कारण है कि कार्य पूरा नहीं होता और निराशा बढ़ती रहती है। अधूरे मन से किए काम में बरकत नहीं हो सकती—

हौछीए हेरिया बशाह नी रौहू, न शुणिया कोने।
थोड़ी खाई कोमेरे सेइंसे, बोहू धाउड़े मोने।

निराशा और अविश्वास की यह पराकाष्ठा है। "आंखों देखी बात पर भी विश्वास नहीं रहा, न कानों सुनी बात पर। काम की चिन्ता से कम परन्तु अधूरे मन के कारण अधिक हानि उठानी पड़ी है।" जब आंखों देखी, कानों सुनी बात पर विश्वास न रहे, तो हर बात पर सन्देह उत्पन्न होगा और हर चीज़ हाथ से निकलती हुई नज़र आएगी—

लाहुल ज़ोता–न टुँड मुण्डला माशा।
राजो-न छ्ूटणा रायसी, झ्ूरी न छ्ूटणा श्रासा।

"लाहुल के पर्वतों पर बिना पत्तों के माशा (एक प्रकार का जहर) है। राजा से रियाया छूट जाएगी और मुझ से प्रेमिका छूट जाएगी।" और इस निराशा में मनुष्य दर-बदर भटकता फिरता है, और उसे कहीं ठिकाना नहीं मिलता—

शीर पाहरू कांगुए, बीणा पाहरू रूपे।
जोंघड़् शौल् खड़ी धारे-रे हुण्डणे, छाती जौली बाल्हे-रे धूपे।

"सिर के बालों को कंघी से संवारा गया है, बीणा को चांदी द्वारा। खड़ी धार पर चल-चल कर पैर थक गए हैं और बाल्ह के धूप से छाती जल गई है।" इस भटकन में सब कुछ नष्ट हो गया है। दर-बदर भटकने के बावजूद भी आशा की कोई झलक नज़र नहीं आती। अब तो समस्या यह है कि इस समाज से अपना मुंह कहां छुपाया जाए :—

फेटी बाल्हा-न, घाह बोणी पराली री छानी।
कौ गझ़ेनू चे़ड़ी चालरू, कौखे श्रापणी ज़ानी।

"फेटी बाल्ह स्थान में घास और पराल की कुटिया बनाई है। अब कहां अपनी संतान को छुपाऊं और कहां अपनी जान को।" आजीविका का अभाव मनुष्य को हमेशा तरसाता रहा है। इस पेट की खातिर उसे क्या कुछ नहीं करना पड़ता। फिर भी सीमित साधनों के अन्दर वह अपना और अपने परिवार का पेट पालना आसान नहीं समझता। तभी मायूसी उसे मुंह छुपाने के लिए विवश करती है, उसे दूसरों की अच्छी स्थिति अखरती है :—

बाही बातरा दाणे री पौई दणेला।
तूसा लोका री लुणनी बाहणी, म्हारी आई जाणे री बेला।

"ठीक समय पर (फसल) बोने से दानों (फसल) की भरमार हुई है। अब तुम्हें फसल काटने और बोने से फुरसत नहीं है, और हमारे जाने का वक्त आ गया है।" प्रेम के क्षेत्र में निराशा का दायरा बहुत विस्तृत है। प्रेम का रिश्ता जितना नाजुक है, वैसे ही उसके प्रति भावनाएं भी विचित्र रहती हैं :—

हौरी नगाली रा भौरलू बेंइजी लागली पौठी।
किता लोड़ी झूरी नज़री पांधे, किता लोड़ी दूरा बे नौठी।

"हरी निरगाल की टोकरी बनी है जिसमें बांस की पत्तियां लगी हैं। या तो प्रेमिका नज़र के सामने रहे, या फिर कहीं दूर प्रदेश चली जाए।" मेले और त्योहार मनोरंजन के अवसर होते हैं। साथ मन में कोई विशेष आशा भी स्थान बनाए रहती है। किसी से मिलने की, व्यापार में अच्छे लाभ की, नए संयोग की आदि अभिलाषाएं मन में रहती हैं, परन्तु जब इनकी पूर्ति नहीं होती तो निराशा आ टपकती है। यूं भी मेलों से वापसी प्रायः निराशा से भरी होती है :—

शाड़ा रे पूंघे नीले-पींउल घूंडे।
दिहाड़ी हेरी बिदा-दसमी, सोंझके टुम्बल मुंडे।

"शाड़ा (मैदान, जहां दुशहरा लगता है) के एक किनारे नीले-पीले पर्दे लगे हैं। दिन को बड़े चाव से दुशहरा देखा और शाम को सिर झुकाए घर वापिस लौट रहे हैं।" निराशा की चरम सीमा में व्यक्ति सोचता है, दुनिया ने उसका सब कुछ लूट लिया है, यहां तक कि हाड़-मांस भी बाकी नहीं छोड़ा है :—

निगर बूटी रे दार–काठ मलेंढा रे चीरिया शौके।
मास खाऊ लाहु-पलाहुए, हाड़ लाऊ बोंडणा जौके।

"मूल वृक्ष की शहतीरियां और तख्ते बनते हैं और जड़ के काट काट कर शौके (जलाने के लिए छोटे टुकड़े)। मांस तो ऐरे गैरों ने खा लिया अब हड्डियों को जौक (दोनों हाथों में जितना आ जाए) द्वारा बांटा जा रहा है।" या फिर निराशा में ग्रस्त व्यक्ति उसे स्वयं बेचने चल पड़ता है—

शाउणा री निहारख राती, गाशा रा लागा छौला।
मास खाऊ लिफिया, हाड़कू बेच्दे चौला।

"सावन की अन्धेरी रात में वर्षा छमाछम बरस रही है। मांस को तो काट–तराश कर खा लिया है, अब हड्डियां बेचने चलो।" जो शरीर जीवन को सुखी न बना सका उससे और क्या काम लिया जा सकता है। दुनियां सब कुछ खा

गई है। शरीर को भी नहीं छोड़ा। यदि हड्डियां वेची न जाएं तो पीस करके खाई जाएं—

शराबे भौरी बोतला, संखिये भौरी शीशी।
मास खाऊ छ्रूए लिफिया, हाड़ खाऊ बौतुए पीशी।

"शराव से वोतलें भरी हैं, संखिया ज़हर से शीशो। मांस छुरे से तराश-तराश कर तथा हड्डियों को पत्थर से पीस कर खा लिया है।" यही नहीं मांस के तराश-तराश कर निकालने के बाद भी इस शरीर से जान नहीं निकलती। आशाओं की आशा पर टिका हुआ मन जीने की इच्छा लिए रहता है—

ऊझे भेखली, बुन्हे भेखली ओंगू।
मास खाऊ लिफिया, हाड़ जुगा-बे डोंगू।

'ऊपर भेखली गांव, नीचे भेखली ओंगू जगह। मांस खाया तराश कर, हड्डी पर उम्र भर के लिए निशान लगाया।' यह भावना तव आती है जव निराशा के कारण मन कुण्ठाग्रस्त हो जाता है, और ताने हृदय को छलनी कर देते हैं :—

शिल्हे नाला–न तिरमिरी–रे काशे।
कोझी-बे बेठा तिन्हा रे खाणेया चुटदी झूरी री आशे।

'छायादार नाले में तिरमिरी (घास) के गुच्छे। किस लिए बैठा है मूर्ख, टूट रहे प्रेम की आशा में।' परन्तु यह आशाओं का पुल टूटता नहीं। दुनियां लाख कहे मन को कौन समझा सकता है, उस की प्रवृत्ति अपनी है। यदि स्पष्ट रूप से मिलन नहीं होता तो सपने में तो मिलन हो ही जाएगा—

हुका तमाकू री चिलमा भौर भौरी नरेली।
दिहाड़ी न्हीसी हेरूई, राती लोड़ी सुपने मेली।

'हुक्का-तम्बाकू की चिलम भर दी नरेल में। दिन को नहीं दिखाई दी, रात को स्वप्न में मिली।'

भाग्य

मनुष्य के जीवन में भाग्य का क्या योगदान है, इसके बारे में आदिकाल से चर्चा होती रही है। और मनुष्य की सफलता और असफलता में भाग्य को हमेशा सराहा या कोसा गया है। चाहे भाग्य कहो या भगवान, विश्व में एक हस्ती, ताकत या शक्ति ऐसी ज़रूर है जो मनुष्य के कार्यों का जायज़ा लेती है, और उसके अनुसार उसे फल प्राप्ति होती है। परन्तु विडम्बना यह है कि भाग्य का नाम जितना मनुष्य की असफलता से सम्बद्ध किया जाता है, उतना सफलता से नहीं। जब सफलता हो तो प्रायः योग्यता, प्रवीणता, साधन-उपयोगिता का नाम लिया जाता है, परन्तु जब मनुष्य को असफलता होती है तो प्रायः भाग्य का नाम सर्व-प्रथम रहता है। मनुष्य भाग्य का पुतला है, उस के अपने हाथ में कुछ नहीं है। न काम उसके हाथ में है न काम का फल उसके वश में है। भाग्य उससे काम कराता है, भाग्य उसे फल देता है। किसी को फल अच्छा मिला, किसी को बुरा; किसी को अधिक किसी को कम। किसी के भाग्य में क्या लिखा है, यह कोई नहीं जानता। जानने का यत्न भी करे तो भी उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

सूने जूही रा हारटू, बूणू लोड़ी रेशमी धागे।
थोड़े पूछ़ी बौतेरे परोहित, बोहु मौथे रे भागे।

"स्वर्ण रंजित हार को रेशमी धागे में संवारा गया है। मार्ग के पुरोहित-ज्योतिषी को कम पूछना, अपने भाग्य को ही अधिक पूछ लेना।" कार्यों की निपुणता से सोने का बनाया सुन्दर हार भी न जाने क्या फल दे सकता है। इसका पता ज्योतिषी भी क्या दे सकता है, हां भाग्य में जो लिखा होगा वह जरूर मिलेगा। मनुष्य तो कुछ और सोचता है, परन्तु भगवान को कुछ और ही मंजूर होता है। इन्सान का हाथ तो किसी वस्तु के लिए उठता है, परन्तु भगवान उसे कुछ और ही फल देता है जो मन में सोचा जाता है, भगवान वह पूरा न करके कुछ और ही गुल खिलाता है—

ढेका फुलू कुसमू, बेउड़ी फूली पदीनी।
जेण्डा सोठू थी मनान, भागे नी कर्मे धीनी।

"ऊपर कुसुम फूल फूला है और नीचे पदीना फूल। जैसा मन में सोचा था, वैसा न भाग्य ने दिया न कर्म में लिखा था।" फिर जब मनुष्य का किसी काम और फल पर अधिकार नहीं है तो अफसोस किस बात का है। भाग्य ने मनुष्य के लिए जो कुछ सुख-दु:ख, भला-बुरा, धन-निर्धनता, सफलता-असफलता, आश्रय-आधार निर्धारित किया है वही होगा। उससे आगे उसे कुछ नहीं मिल सकता, चाहे मनुष्य जितना प्रयत्न करे उसे वही मिलेगा जो उसके भाग्य में बन्धा है—

नीलीए चीड़ीए पांखड़ तेरे चरीखे।
एबे किझीबे लड़फड़ाहिया सा, विधि हुए माते रे लिखे।

"हे नीले पक्षी, तेरे पर छोटे नोकदार बनाए गए हैं। (तूने इन्हें नहीं बनाया है) अब क्यों तड़पता है यह सब विधिमाता के लिखे हैं।" भाग्य का दूसरा नाम 'नियति' है, और सही अर्थों में यही उसका असल नाम है। जो एक बार नियत है, सो है ही उसे बदला नहीं जा सकता। जो कुछ भाग्य में लिखा है उसे मिटाया नहीं जा सकता—

बौकरी मोंझा—न चिम्रां बौकरी, छलू मेलणा टूरा।
हौथा रा लिखुआ जाम्रा सा टूशी पूंझिया, मौथा रा लिखुम्रा पूरा।

"बकरियों में चिआं बकरी (जिसके कान लम्बे-लम्बे होते हैं) है, परन्तु उसका बच्चा टूरा है (जिसके कान छोटे और नुकीले होते हैं), यह सब कर्म के खेल हैं। हाथ का लिखा पोंछ कर मिट जाता है परन्तु माथे का लिखा पूरा होता है।" हाथ का लिखा बदला जा सकता है, मिटाया जा सकता है, परन्तु माथे में जो लिखा है, भाग्य में जो बन्धा है वह पूरा होकर रहता है, उसे मिटाया या हटाया नहीं जा सकता। कितनी भी कोशिश की जाए सब बेसूद है, निरर्थक है। यह अपने भाग्य की बात है :—

नाला बाशला तीतरू चाकरू धारा बाशला बीणा।
केण्डा लिखू मेरी शोभली झूरी-बे छीड़ी बेचिया जीणा।

"नाले में तीतर और चकोर बोल रहे हैं और पर्वत पर मृग। मेरी इस सुन्दर प्रेयसी को कैसे लिख दिया लकड़ी बेच कर जीना।" और जो एक बार लिख दिया, सो लिख दिया। उमर भर लकड़ियां बेच कर ही पेट भरना पड़ता है, उससे छुटकारा नहीं। दूसरा काम प्रथम मिलता ही नहीं, यदि मिल भी जाए तो उसमें सफलता प्राप्त नहीं होती। 'वही होता है जो मंजूर-ए खुदा होता है।' मनुष्य चाहे कि मैं इन परिस्थितियों से निकल भागूं, वह ऐसा नहीं कर सकता :—

पाणी आणू पणिहारनीए झक-मकले लोटे।
जाणा थी दूरा देशा-बे, भाग गोए आसरे खोटे।

"पनिहारिन ने चमकीले लोटे में पानी लाया। दूर देश जाना था, परन्तु हमारे भाग्य खोटे हैं।" जब भाग्य में इन्हीं परिस्थितियों से जूझना लिखा है, तो फिर वह इन्हें कैसे छोड़ सकता है। परदेस नहीं जा सकता। कर्म में लकड़ी बेच कर गुज़ारा करना लिखा है, ऐसा ही रहेगा, यदि परदेस जाना भी नसीब हुआ तो वहां भी वही होगा जो माथे पर लिखा है। कितना ही सोच-समझ कर इन्सान काम करे, कदम फूंक-फूंक कर चले वह भाग्य के लिखे से बच नहीं सकता। हेर फेर कर वह वहीं पहुंचेगा :—

औधा-न टौपे गाहणे, औधा-न टौपे झूले।
बारह बौर्श केरी तपस्या, तेरहवीं बौर्श भूले।

(गहरी नदी पार करने का दृश्य है) "आधी नदी तो पैदल पार की और आधी नदी झूले पर (तब जाकर दूसरी ओर पहुंचा जा सकता है)। तब बारह वर्ष तक घोर तपस्या की परन्तु (हाय किस्मत!) तेरहवें वर्ष में भूल हो गई।" सारी तपस्या खत्म, सारे कष्ट निरर्थक, सारी साधना फजूल। कहां बारह वर्ष का लम्बा समय कहां तेहरवें वर्ष की आशा भरी अवधि, परन्तु कहां एक पल की भूल, कि उस भूल ने सब कुछ मिट्टी में मिला दिया। क्या साधना में कमी थी? क्या मन में कपट था? क्या ईमानदारी में चूक थी? क्या उद्देश्य में वफादारी नहीं थी? क्या कर्त्तव्य-परायणता नहीं थी? सब कुछ था, परन्तु भाग्य में ऐसा नहीं लिखा था। तभी तो तेरहवें वर्ष की क्षणिक भूल ने सब कुछ मलियामेट कर दिया। परिणाम-स्वरूप जो काया फूल सी कोमल थी, उसे अत्यन्त कष्ट सहन करने पड़ते हैं :

हेठे सौहरा पीछे भेखली धारा।
फूल नी थी साधिदा देश लाऊ साधणा सारा।

"नीचे शहर (कुल्लू) और ऊपर भेखली धार (गांव) है। फूल भी सहा नहीं जा सकता था, सारा देश सहना पड़ रहा है।" कोमल से कोमल काया को भी जंगलों की धूलि छाननी पड़ती है। सीता जैसी सावित्री को वनों में रहना पड़ा है, क्यों? केवल भाग्य के लिखे के कारण। कुलुई समाज में नारी तो पूर्णतः भाग्य के हाथों कठपुतली है। एक लोकोक्ति में कहा गया है "बेटड़ी-रे भाग कुम्हारा-री हांडी, (स्त्री का भाग्य कुम्हार का घड़ा)। न जाने उसने किस घर जाना है। भाग्य ही उसे अच्छा और बुरा घर देता है :—

ओरे-पोरे बोलणा बधाहारा नगरू, मोंझे तरांबली लौसी।
शाहुकारा-री थी लाड़की, कुणी छारी बे बौसी।

"इधर-उधर बदाहा नगर बसता है और बीच में तराम्बली-लौसी। साहूकार की लाडली पुत्री थी परन्तु किस निर्धन के घर में बस गई।" परन्तु अच्छे घर में बसना तो उसके वश की बात नहीं है। वही होना है, वही घर मिलता है जो विधाता ने लिख दिया है। उसके लिखे का महत्व इतना बड़ा है कि हज़ारों-लाखों कल्पों के बीत जाने पर भी वह लिखित आदेश न घटता है, न बढ़ता है, न मिटता है, न बदलता है। उसे भोगना ही पड़ता है। इस भाग्य के लिखे ने बड़ी-बड़ी सलतनतें नष्ट की हैं :—

जम्बलू देऊआ रे मुख-मोहरे, खीर गंगा रा पाणी।
राजा न छ ुटणा रायसी, बेढ़ा-न छ ुटणा राणी।

"जम्बलू देवते के मुख-मोहरे, खीर गंगा का पानी (दोनों पवित्र वस्तुएं)। राजा से राज्य छूट जाएगा और रानी से महल।" प्रेम के क्षेत्र में तो भाग्य का विशेष स्थान है। प्रेमियों के बीच सम्बन्ध तो नियति के अनुसार ही होते हैं। जब मर्यादा से मिलन नहीं होता तो भाग्य के नाम पर हार माननी पड़ती है :—

टोपी किसती, जोता-री भराशीए सीनी।
जूणी भ ूरी-री तेइएं लड़फड़ाहुआ, भागे नी करमें धीनी।

"किश्ती टोपी, पर्वत-शिखा की धीमी वर्षा से गीली हो गई। जिस प्रेमिका केलिए तड़प लगी थी, उसे भाग्य और कर्म ने नहीं दिया।" वैसे समाज में कई बन्धन होते हैं परन्तु इन बन्धनों के बावजूद भी भाग्य अच्छा हो तो संयोग भी अच्छा होता है। वहां बन्धन अवरोध न बन कर सहायक सिद्ध होते हैं। भाग्य साथ होना चाहिए, वरना अनुकूल परिस्थितियां भी प्रतिकूल हो जाती हैं :—

नौई खदली, ढिग-मिगले टापे।
थोड़ी खोई दोखी बेइरीए, बोहू खोई आपे।

"नदी खदली (अनिर्मल, जिसमें मिट्टी आदि हो) है, और पार गुज़रने के लिए पत्थर हिलते-डुलते हैं। शत्रु-वैरी ने कम, अपने आप ने मुझे अधिक हानि पहुंचाई है।" यहां अपने आप से अभिप्राय: अपने भाग्य से है। इसी तरह :—

चीणी चिफली न्हौठी पन्दरह बौते।
थोड़ी खोई री नाती कनारीए, बोहू आपणे हौथे।

"चीणी (धान की एक किस्म) बड़ी चिकनी है (मूसल से इधर-उधर फिसल जाती है) पन्दरह रास्ते से निकल गई। कुछ रिश्तेदारों ने गलत सलाह देकर बिगाड़ दी है परन्तु अधिकतर अपने हाथ से बिगड़ गई है।" दूसरों का कसूर नहीं। दूसरों की ईर्ष्या द्वेष से कुछ नहीं होता। भाग्य में जो लिखा है वही होकर रहता है :–

खीर गंगा रा मौगरू, बासकी नाल़ा रे तीके।
सेभी बे आपणे मौथा रा लिखुआ,
कौसी नी होरी री भ़ौके।

"खीर गंगा के पानी की नाली, वासकी नाग के सामने है। सब को अपने माथे का लिखा हुआ (मिलता है) किसी और की ईर्ष्या के कारण नहीं।" जिसके हिस्से में जो आया, वही मिलेगा। वाज़ार का सौदा खरीदा जा सकता है, परन्तु भाग्य खरीदा नहीं जा सकता :—

टोपी मखमला री सिही नीले पिउंल़े धागे।
होर सौउदा मूले-तोलिया, सुख-दुःख सी आपणे भागे।

"मखमल की टोपी, नीले-पीले धागों से सिलाई है। और सौदा तोल मूल्य से मिल जाता है। दुःख और सुख अपने-अपने भाग्य के अनुसार है।" समाज का यह कहना कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वंय होता है, किस हद तक ठीक होगा ? क्योंकि मनुष्य के प्रयत्न चाहे कैसे भी हों, उन सब का परिणाम प्रायः प्रयत्नों के अनुकूल नहीं होता। या विधाता को और मंजूर होता है या उसे मनुष्य के प्रयत्नों का ख्याल नहीं होता। वह वही फल देता है जो उसे पसन्द है चाहे वह फल व्यक्ति के परिश्रमों के अनुकूल हो या प्रतिकूल :—

धूपा-रे शोखले, शूके पाणी रे कुआं।
माण्हू री भौपट चिदकी, देइबे सोची रा हुआ।

"कड़कती धूप का प्यासा, पानी की तलाश में निकलता है, परन्तु दुर्भाग्य साथ है, कुआं मिला तो सूखा। मानव यूं ही चिन्ता करता है, दैव ने सोचा है, वही होकर रहता है"। और चूंकि उसी के हुक्म से सारा संसार चलता है, इसलिए अक्सर न चाहते हुए भी मनुष्य को वह काम करना पड़ता है, जिसकी उसे कभी आशा नहीं होती। तब हर कोई यह सोचने पर विवश हो जाता है कि आखिर क्या कारण होगा। मनुष्य कई बार भाग्य का मारा अपने निवास स्थान को छोड़ने पर विवश होता है : —

सेभी रे कर्म आप-आपणे, काल नी हेरू कोईए।
कौबे चौली भोर भरोटूए, कौ-री बदल़ी होइए।

"सब के भाग्य अपने-अपने हैं, कल किसी ने नहीं देखा है। अरी, भरे बोझ के साथ कहां जा रही है, कहीं की बदली हुई है क्या ?" हां, जब एक स्थान का अन्न-जल समाप्त हो तो दूसरी जगह प्रस्थान किया जाता है। परन्तु स्थान छोड़ा जा सकता है, भाग्य को तिल्लांजलि नहीं दी जा सकती। वह साथ चलता है, और यदि भाग्य में कष्ट बंधा है तो दूसरे स्थान पर भी वही हाल होता है:—

मुंहड़ू खाऊ ओइरे, शोभ खोसल़े दोंदे।
गौहर शोटिया बाल्हा वे आई, भाग मौड़ा-बे सोंघे।

"मुंह का चिन्ता के कारण रंग बदल गया है, और छिछले दांतों के कारण सुन्दरता खत्म हो गई है। पहाड़ों को छोड़ कर मैदानों में आई, परन्तु भाग्य वहां भी साथ है।" उसे कोई नहीं रोक सकता। होनी सर्वदा बलवान है, उसका लिखा पूरा होकर रहता है :—

एंदे हिउदा झ़ूरी मेरीए, घौर निभला छोड़या।
कीझी-बे लागी तलमलाहिंदी, होणी रौहा सा होइया।

"आने वाली हिम ऋतु तक, हे प्रिये ! घर छत्त पड़ कर पूरा हो जाएगा। क्यों तिलमिला रही है, होनी होकर रहेगी।" इसमें सन्देह नहीं कि कुलुई समाज भाग्यवाद पर बहुत निर्भर करता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वहां के लोग प्रयत्नशील नहीं हैं। उन्हें अपने प्रयत्नों पर पूरा भरोसा है, यद्यपि फल की प्राप्ति वे भाग्य की देन समझते हैं। तभी तो वे सभी काम समय पर करने के आदी हैं, चाहे जो कुछ होना है, वह होता रहे। जब किस्मत में ही कमी दी है तो प्रयत्नों से अधिक नहीं मिल सकता, परन्तु गीता के उपदेश के अनुसार कर्म पर ही हमारा अधिकार है फल पर नहीं। इसलिए प्रयत्नों के बावजूद यदि सफलता प्राप्त न हो तो मनुष्य का अपना कसूर नहीं है :—

बौता रा झारटू पलासीदे पलासीदे कुणी विघने शुक।
थोड़ी खोउई आपणे हौथे, बोहू रिजक मूकू।

"रास्ते की छायादार झाड़ी फूलते-फूलते किस विघ्न के कारण सूख गई। अपने काम के कारण कम हानि हुई है, अधिकतः अन्न-जल (विधाता का दिया) खत्म हो गया है।" हां, जीवन के लम्बे मार्ग में नामालूम कहां, कब और कैसे विघ्न पड़ते हैं, इन पर मनुष्य का कोई काबू नहीं। मनुष्य हर समय सफलता के लिए ही प्रयत्न करता है, परन्तु सभी प्रयत्न सफल नहीं होते। यदि मनुष्य को अपने हर काम का उसकी इच्छा के अनुसार फल मिलता तो सम्भवतः इस संसार का रूप यह न होता जो अब है। उसको वही फल प्राप्त होता है जो कि विधाता द्वारा निर्धारित है। इसलिए मनुष्य की चेष्टाएं वही रहने पर भी उस की स्थिति विभिन्न समय में विभिन्न होती है :—

सौहा नौचले देउलू रुण झुणए रागे।
माण्हू सी तेए तेण्डे, रूड़ी रे झ़सके लागे।

"देउलू (देवता के उपासक) सौह (मन्दिर के मैदान) में रुण-झुण राग में नाच रहे हैं। मनुष्य वही है, परन्तु सूखे की लू का असर पड़ गया है।" अकाल, सूखा,

वाढ़, रोग, अग्नि जैसे दैवी आपात सब मनुष्य के प्रयत्नों पर पानी फेर देते हैं। एक ही अग्नि-कांड समृद्ध घर-परिवार को नष्ट कर देता है। वाढ़ के फल-स्वरूप हरी-भरी फसलें वरवाद हो जाती हैं। ये सब भाग्य के चक्कर हैं। मनुष्य के देखते-देखते उसके फल उसके हाथों से निकलते नज़र आते हैं :—

उआरे ढाडगा पोरे पौई ज़ियाणी।
ज़ुण साल थी लुणनी बाहणी, सो लाई बांदरे खाणी।

"इस ओर ढाडग और उस ओर ज़ियाणी गांव हैं। जो फसल अव काटनी-समेटनी थी, वह वन्दरों द्वारा उजाड़ी जा रही है। हाय किस्मत! कितने परिश्रम से फसल उगाई गई थी परन्तु जव उसके काटने का समय आया तो न जाने किस कारण उसे समेटा नहीं गया और वह वन्दरों द्वारा उजाड़ी गई है। यही भाग्य का चक्कर है। इसमें मनुष्य का कोई कसूर नहीं। विधाता का लिखा पूरा होता है :—

भागा रे कौड़छे, मुँआं लकड़ी ढोंदा।
विधिमाता रा लिखुआ, मने नी सोचिया होंदा।

"भाग्य की कड़छियां देखें, लकड़ियां ढो-ढो कर मर गया। विधाता का लिखा हुआ पूरा होता है, मन में सोचते रहने से कुछ नहीं होता।" परन्तु उसके लिखे हुए में भी तो कोई न्याय नहीं है। वह अच्छे का अच्छा नहीं लिखता, न बुरे का बुरा। न सब को एक वरावर लिखता है। वास्तव में उसके निर्णय की कसौटी निराली है। क्या नियम होंगे? यह कोई नहीं जानता। इतना स्पष्ट है कि सवको एक सा नहीं लिखता :—

ठांडे पाणी रा डिभणू, जोड़े पिऊ मनाल़े।
एकी-बे लिखू कलम-दुआते, एकी-बे छीड़ी रे डाल़े।

"ठण्डे पानी के चश्में में मृनाल पक्षी के जोड़े ने जल पिया। (भाग्य की विडम्वना देखिए) एक को कलम-दवात से लिखा गया है, और एक को लकड़ी द्वारा।" यही विचित्र वात है, जिस का मनुष्य अन्दाजा नहीं लगा सकता, वह वात हो कर रहती है। विधाता के निर्णय का मानदण्ड ही अलग है। वही नीर-क्षीर करने में एक मात्र शक्ति है। उस की नजरों से कोई नहीं वच सकता परन्तु निर्णय का मान-दण्ड क्या है, इसे मानव की तुच्छ वुद्धि समझ नहीं सकती। यदि समझती तो इस समाज की कार्य-प्रणाली कुछ और होती। मनुष्न केवल यह सोचता है कि उस के साथ न्याय नहीं हुआ है। परन्तु अपराधी अपने अपराध का स्वयं जज नहीं हो सकता। निर्णय तो प्रवल हाथों में है। हां मनुष्य को

सोचने के लिए मुक्त रखा है, वह कुछ भी सोच सकता है। अतः चूंकि उसकी सोच के अनुसार उस के साथ निर्णय नहीं हुआ है, उसके साथ भेद-भाव हुआ है, और उस के पास इसका कोई इलाज नहीं है, वह केवल बुरा-भला कहने तक सीमित रहता है :—

खीर गंगा रा पौधरू, भेखली धारा रे तीके।
भेटी-न काटणे हौथ विधिमाता रे, धाउड़े कागद लिखे।

"खीर-गंगा का जल-स्रोत भेखली धार के सामने है। विधाता के हाथ निकट पीछे से ही काट देने हैं, क्योंकि उसने अधूरे कागज़ लिखे हैं।" और विधाता का यही लिखा है जो पूरा होता है। मानव चाहे जो प्रयत्न करे होगा वही जो विधाता ने पूर्व निर्धारित किया है :—

दूई वेहणी, जोंडी खोड़ री नोटी।
आमा बापुए धीनी थी खरे घौरा न देईबे बाहिरी खोटी।

"दो वहनें, (जैसी अखरोट का जोड़ा हो)। मां वाप ने दी थी अच्छे घर में, दैव ने सोचा है खोटा।" जुड़वीं वहिनें एक समय एक घड़ी में जन्म लेती हैं। एक ही वातावरण में पलती हैं, फिर वह ज्योतिष कहां गया। एक का जीवन सफल हुआ और दूसरी का असफल। न पैतृक गुण के समान होने का उन पर समान प्रभाव पड़ा है और न एक ही वातावरण ने उन्हें एक जैसा बनाया। एक का दूसरे से प्रतिकूल जीवन-यापन में वंशानुकूलता और वातावरण के प्रभाव ने विधाता के निर्धारण के सामने सिर झुकाया।

प्रतीक्षा

अंग्रेज़ी भाषा के कवि मिलटन ने एक जगह कहा है "Those also serve who only stand and wait" अर्थात् जो केवल खड़े रहते हैं और प्रतीक्षा करते हैं वे भी सेवा करते हैं। मिलटन जवानी में ही अन्धा हो गया था, और उसे चिन्ता हो गई कि अन्धा होने से उसके पास जो कविता लिखने की प्रतिभा है, वह अधूरी रह जाएगी और हो सकता है कि भगवान उससे पूछ बैठे कि तुम्हें जो कला दी थी उसका सदुपयोग क्यों नहीं किया। तथा कुछ देर सोचने के वाद उसके अन्त:करण ने उत्तर दिया कि भगवान के दरवार में कितने ही सेवक हैं, उसके लिए सेवा की कोई कमी नहीं। जो केवल उसके दरवार में खड़े रहते हैं और प्रतीक्षा करते हैं वे भी सेवा कर रहे हैं। सो, भगवान के दरबार में ऐसा नियम होगा, परन्तु क्या प्रेम के क्षेत्र में भी ऐसा नियम होता होगा ? इसके वारे में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यहां तो प्रतीक्षा के समय के बीतने का अर्थ है यौवन के ढलने से प्रतीक्षा का व्यर्थ जाना—

जोथ चनण मोंझ सौगें बादल खाई।
छके केर हां–नांह रा बौदल, जुआनी निबरी आई।

"चमकता चन्द्रमा आकाश के वीच में ही वादलों ने खा लिया (ढक लिया) है। (हे प्रिया) हां-नांह में शीघ्र उत्तर दे दो जवानी वीत रही है।" जवानी की ही क्या वात है, जहां वेवफाई हो, सारी उमर वीत जाती है, परन्तु प्रतीक्षा के क्षण लम्वे होते-होते बीतने में नहीं आते। इसे वेवफाई समझो या मजवूरी, परन्तु यह सच है कि सारी आयु केवल प्रतीक्षा में ही पूरी हो गई—

खड़ी धारा री गोहर होंडी-होंडीया फारी।
कौखे रूधू मेरे मना-रा भौंरू उमर खोउई सारी।

"खड़ी धार का मार्ग चल-चल कर खत्म नहीं होता। कहां खो गया है मेरे मन का भौंरा, मेरी सारी उमर खराब हो गई है।" प्रतीक्षा की घड़ी हमेशा लम्बी होती है। मिनट का समय घंटों और घंटों का समय दिनों के बराबर लगता है। हां, प्रतीक्षा के बाद मिलन सम्भव हो जाए तो साधना सार्थक हो जाती है। परन्तु प्रतीक्षा के बाद भी यदि जुदाई का अन्त न आए तो शरीर समय से पहले ही क्षीण हो जाता है और मन पंखेरू तड़फ-तड़फ कर मरता है—

छौह बीहा रा आइर औठा बीहा री बरुआं।
छ के केरी मिलणा ज़ूरीए, लोभी सा तड़पी मुआं।

"छः बीसों (एक सौ बीस) का ताना है और आठ बीसों (एक सौ साठ) की कंघी। शीघ्र मिल ले प्रिया, प्रियतम तडफ-तड़फ कर मर रहा है।" हर चीज़ की सीमा हो सकती है, परन्तु प्रतीक्षा की कोई सीमा नहीं। विशेषतः प्रेम के क्षेत्र में ऐसा सीमा-निर्धारण असम्भव है। नाड़ी-ज्ञान से रोग निदान होता है। परन्तु इस ज्ञान से प्रतीक्षा की घड़ी भी मापी जा सकती हो, इसके बारे में ठीक से कहा नहीं जा सकता। परन्तु एक दोहा ऐसा संकेत ज़रूर करता है—

हेठे भूइणा उभ्के खड़ी नरोगी।
छौह महीने एणा की बौरशे, नाड़ी लोड़ी हौथा री थोगी।

"नीचे भूइण गांव और ऊपर नरोगी गांव है। छः महीने में आना होगा या वर्ष के बाद, ज़रा नब्ज़ देखकर तो बताओ।" वास्तव में प्रतीक्षा की घड़ी बड़ी नाज़ुक और दुःखदायी होती है। नाज़ुक इसलिए कि भावनाओं की कड़ी बिना आधार के आगे बढ़ती जाती है। और दुःखदायी इसलिए कि मिलन की आशा कठोर से कठोर वातावरण को भी झेलने के लिए विवश करती है, और नियत दिन आगे बढ़ता जाता है—

निहाल़दे-भाल़दे मेरे लोभीया, दिहाड़े मियादी रे बौधे।
मुँहड़ू छोऊ श्रोईरे, हिकड़ू भौरू करोधे।

'इन्तज़ार करते और देखते-देखते, हे प्रियतम, मियाद के दिन बढ़ते जाते हैं (और इस प्रतीक्षा का परिणाम यह है कि, मन के दुःख के कारण) मुंह पर निराशा और छाइयां पड़ गई हैं और छाती क्रोध से भर गई है।" मुंह पर ओइर (नाक पर और नाक के गिर्द काला धब्बा) ऐसा ही होता है जैसा चन्द्रमा पर कालिमा। ओइर का मुख्य कारण चिन्ता है और चिन्ता भी प्रतीक्षा के परिणामस्वरूप। जब इन्तज़ारी हद से बढ़ जाती है तो बेचैनी आ घेरती है और बेबसी के कारण मन कहीं नहीं लगता। उत्सुकता बढ़ती है और कहीं एक जगह पर निश्चय से नहीं बैठा जाता। तब रास्ते में ही राह ताकना पड़ता है—

झांगीया कुकड़ कौंरी पांधा–न रौता ।
छ्के फिर लोभीया घौरा-बे, निहालदी बेशी री बौता ।

"बांग देता हुआ मुर्गा गर्दन पर लाल है । हे प्रियतम, शीघ्र घर लौटो, मैं रास्ते में ही प्रतीक्षा में बैठी हूं ।" प्रतीक्षा का भी कारण है । कारण यह है कि कदम-कदम पर साथ चलने की इच्छा है । जब भी तुम आओ, मैं हर जगह तुम्हारे साथ चलूंगी । एक कदम भी पीछे नहीं रहूंगी :—

जोथ लागी चनण, पूजी सौंर्गे रे पूंगे ।
छ्के केरी हां-नांह रा बदल, मूंसा होंडणा सूंगे ।

"चमकता चन्द्रमा आकाश के किनारे पर पहुंच गया है (अर्थात् रात खुलने वाली है) । हां-नांह का उत्तर शीघ्र दो, मैं साथ चलूंगी ।" परन्तु हां या नांह में उत्तर आता ही नहीं, न ही साथ चलने की सूरत नज़र आती है । तब पत्र डाल कर समस्या की तीव्रता को तीखे शब्दों में व्यक्त किया जाता है :—

कौंधा बेठी जांहिडी तोड़ बेठी शियारी ।
छ्के देई मेरी चिठी रा बदल, दूरा री आई बदली म्हारी ।

"मकान की छत के एक किनारे छोटा पक्षी और दूसरे किनारे पर घटारी बैठी है । जल्दी देना मेरे पत्र का उत्तर, दूर की बदली हो रही है हमारी ।" कितने समय से यह प्रतीक्षा की घड़ी लम्बी होती जा रही है । निकट होने पर भी आकांक्षाओं के पूर्ण होने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है । न जाने अब बदली में स्थान की दूरी के कारण तुम्हें हमारी याद भूल जाए और यह प्रतीक्षा सदा केलिए मेरे मन में बनी रहे, परन्तु तुम्हें मेरी याद भी न आए । यदि पत्र का उत्तर फिर भी न आए तो ताने भरे शब्दों में फिर यह कहने के लिए विवश होना पड़ता है—

उथड़ी धारा–न महीन बरूरूआ माटा ।
छ्के देई हां-नांह रा बदल, देशा-नी माण्हु रा घाटा ।

"ऊंची धार पर बारीक सूखी मिट्टी है । जल्दी देना हां-नांह में उत्तर, देश में आदमी की कमी नहीं है ।" हां, आदमी की कमी नहीं है, परन्तु जो कमी प्रेयसी को है, उसकी पूर्ति किसी और से नहीं हो सकती । केवल कहने की बात है कि देश में आदमियों की कमी नहीं है अन्यथा दिल की बात दिल से पूछो तो सही बात निकल आती है, यह कमी केवल एक से ही पूरी हो सकती है, जिसको दिल दे दिया है । यह दिल सूर की गोपियों का दिल है :—

उधो मन नहीं दश बीस,
एक हुतो सो गयो श्याम संग
कौ अराधे तऊ ईस

मन तो एक ही होता है। वह श्याम के साथ चला गया है तो उधव के ईश से कौन सा दिल लगाया जा सकता है। यही वात कुल्लू की युवती की है :—

बागा-न भूजी खोड़ा री बूटड़ी, रियासा रे कौड़े कन्होरा।
मन नौठा लोभीया तेरे संघा-न, कोई नी हेरीदे होरा।

"वाग में कागज़ी अखरोट का वृक्ष और घने जंगल में कड़वा क़नहोर वृक्ष। मन गया है प्रिये तेरे संग, कोई नहीं दीखता और।" और दूसरा कोई दीख भी नहीं सकता। जिस आंख में एक चित्र अंकित है उस पर दूसरा चित्र नहीं उतर सकता। यह कोरा कागज़ है, जो चित्र खिच गया सो खिच गया। मिट नहीं सकता। कागज फट सकता है। उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे परन्तु जो चित्र वना है वह किसी भी तरह उतर नहीं सकता। मानो इन आंखों ने एक बार देख कर फिर पर्दा ढक दिया हो, ये किसी और को देखने के लिए तैयार नहीं हैं। आंख और मन का यह मेल कितना स्पष्ट है। जो आंखों के सामने से हट नहीं सकता, वह दिल से वाहर भी नहीं जा सकता। मन और नेत्र एक ही उद्देश्य के हामी हैं, दोनों में कोई मत भेद नहीं। परिणाम स्पष्ट है :—

काला शाउंला मुंहड़ू बांका, बांके दोंदड़ू शेते।
भेड़ी-भेड़िया केरु बुणना, मन नी लागदा केथे।

"काला सांवला चेहरा सुन्दर, और सुन्दर हैं दान्त श्वेत। उधेड़-उधेड़ कर बुनते गए परन्तु मन कहीं नहीं लगता।" मन सर्वदा उधेड़-वुन में मग्न रहता है। कब प्रियतम का मिलन होगा यही चिन्ता सताती रहती है। तभी उसे आगामी मेले की याद आती है और पत्र भेजती है :—

कोरा भेजू कागद, मोंझे लिखी ग्रेजी।
होर जाचा देई डिगणे, शाउण जाचा–बे एजी।

"कोरा भेजा कागज़, वीच में लिखी है अंग्रेजी। अन्य मेले रहने देना (प्रियतम) श्रावण (महीने) के मेले को ज़रूर आ जाना।" श्रावण महीने के मेले तक प्रतीक्षा रहेगी, परन्तु सावधान रहना, उस मेले में ज़रूर आ जाना। मैं प्रतीक्षा में रहूंगी। क्या तुझे याद नहीं कि तूने शीघ्र लौटने का वचन दिया था :—

उथड़ी कोठी–न फेर–फीरदे तीरू।
जांदी घेरे नौठा हौथ मलाया, छेके लोड़ी घौरा-बे फीरू।

"ऊंचे भवन में चारों ओर ताकियां हैं। जाती वार गया हाथ मिला कर, शीघ्र चाहिए घर को लौटा।" तुम जब मुझ से मिल कर गए थे तो यही वचन दिया था कि शीघ्र घर लौटूंगा। अब मुझे प्रतीक्षा करते हुए वर्षों वीत चुके हैं,

परन्तु तुम अभी लौटने का नाम नहीं लेते। क्या तुम अपना वायदा भूल गए हो। और जब उत्तर आता है तो प्रेयसी को अत्यन्त निराशा होती है, क्योंकि उसने तो सावन महीने आने के लिए कहा था और उत्तर में कहा गया है कि सावन में नहीं असौज में ही दशहरे के अवसर पर आएंगे :—

गौटी बी गौटी शेगड़ नाले री गौटी।
एण्डा नी लोभी मिलदा, बिदा दसमी घौटी।

"पत्थर की कंकरी (गौटी) शेगड़ नाले की कंकरी (बड़ी विचित्र है)। ऐसे नहीं मिलता प्रेमी विजय-दशमी के विना।" अर्थात विजय-दशमी से पहले मिलन नहीं होगा। यों ही प्रतीक्षा की घड़ी लम्बी होती जाती है। इसी बीच प्रतीक्षा में रात दिन मायूसी, बेचैनी और बेवसी शरीर को खाती रहती हैं। शरीर सूखता जाता है और आशाएं घटती जाती हैं, मन क्षीण होता जाता है :--

बौरश निभदे-निभदे झूरिए, दिहाड़े गिणुए रौहे।
हांदरे जौली रे झूरी-रे जलवे, बाहरे लेमके लौहे।

"वर्ष घटते-घटते, हे प्रिया, दिन गिनती के रह गए हैं। अन्दर मन जल गया है प्रेयसी की चिन्ता में, बाहर चाट लिए हैं लौहे ने।" लौहा वह कीड़ा है जो ऊन के धागों या पटुओं को काट खाता है। प्रतीक्षा में वर्षों का समय बीत गया अब तो आस बन्ध गई है और दिनों की गिनती का समय रह गया है। परन्तु इस लम्बी प्रतीक्षा ने शरीर को सुखा दिया है, मन को जला दिया है। प्रतीक्षा में राह ताकते-ताकते आंखें थक गई हैं। थकी ही नहीं, नेत्रगोलक ही धंस गए हैं :—

हिउंआ रा लागा भरूहरू आग भौकली गेठे।
तौ निहालदे-भालदे लोभीया, हौछी रे डेलरू बेठे।

"बर्फ की लगी है बौछाड़, आग जल रही है अंगीठी में। तेरी प्रतीक्षा करते और तुझे देखते-देखते, हे प्रिय, आंख के गोलक धंस गए हैं।" सर्दी का मौसम हो बाहर बर्फ लगा हो, तो अंगीठी के निकट बैठे-बैठे प्रेमिका को प्रेमी की याद सताएगी ही, और तब उसे अनुभव हो जाता है कि इस प्रतीक्षा में उसके शरीर और मन को कितनी क्षति हुई है। उसे याद आती है कि जब विदा हुए थे तो एक महीने का समय बताया था, अब तो वर्ष बीत रहा है :—

रात बियालीए मेरे लोभीया, सीड़ औधला खाऊ।
एक महीना रा बचन थी बौरश निभदा आऊ।

"रात को भोजन करते समय हे प्रिय! सीडू (एक प्रकार की रोटी) आधा ही

खाया। एक महीने का वचन दिया था, वर्ष बीतने को आ गया है।" तेरी याद में खाना भी नहीं खाया जाता। आधी रोटी खाती हूं। परन्तु तुम हो कि वचन पूरा नहीं करते। महीना भर के लिए गए थे और वर्ष बीत रहा है। वर्ष भी बीत जाता है। तब उसे लगता है कि उसके प्रेमी के साथ जो बाहर दूर देश में काम करने गए थे, वे सभी आ गए हैं, परन्तु मेरा प्रियतम कहां रह गया :—

कोट कोहड़ा फेर फीरदे खीसे।
होरी रे लछ़रे-पछ़रे श्राए घौराबे, मेरा सो जेलकू कीसे।

"कोट फीके लाल रंग का है, चारों ओर जेवें लगी हैं। शेष सब चुस्त चालाक आए हैं घर को, मेरा वह भोला कहां रह गया है।" और प्रतीक्षा एक ओर की नहीं है। प्रेमी और प्रेमिका दोनों एक ही दर्द से पीड़ित हैं। प्रियतम जब घर नहीं लौटता तो प्रेयसी को मिलने की इच्छा इतनी तीव्र हो उठती है कि वह कोरा कागज़ भेज कर मन की व्यथा सुनाती है :—

देऊ निभे डेहरे, गूर निभे ग्राऊंए।
कोरा भेजू कागद, सजन माण्हू-रे नाऊंए।

"देवते समाप्त हुए मन्दिरों में, चेले-गुरू गांवों में। कोरा भेजा कागज़, सज्जन पुरुष के नाम।" और कोरे कागज़ में न केवल जुदाई की व्यथा का बिखेड़ा किया है, वरन् समय निर्धारित है कि आगामी मेले पर तो प्रिय अवश्य आ जाना :—

तौते पाणी री कुहड़ी, ठांडे पाणी री बाई।
साजा श्राऊ शौइरी, म्हारी लोड़ी पाहुणी श्राई।

"गर्म पानी का कुंआ, ठण्डे पानी की बावली, त्यौहार आया शैरी का, हमारे यहां महमान आना।' और आने से पहले पत्र अवश्य दे देना ताकि मेरी प्रतीक्षा की घड़ी सुलभ बन जाए और मुझे निश्चय हो कि मेरा महमान शीघ्र ही आने वाला है :—

हेगड़ नौइए ढिग-मिगले टापू।
श्रागा-न भेजी चिठी-कागद, पीछा-न एजी श्रापू।

'हेगड़-नामक नदी के हिलते-जुलते टापे (नदी में वे पत्थर जिन के ऊपर चल कर नदी पार की जाती है। आगे (पहले) भेजना चिट्ठी-कागज, पीछे से आना स्वयम्।" और जब प्रियतम घर लौटता है तो उसे कुछ नज़र नहीं आता। उसकी नज़रें केवल प्रेमिका को ही ढूंढती हैं :—

तोड़ू बेशला जांहिड़ू, छापर बेशला कागा।
भ़ूरी न्हीसी बोला हेरूई, घौर हेरिदा लागा।

'खम्भे पर वैठा है पक्षी, छप्पर पर वैठा है कौआ। प्रेयसी नहीं दीख रही है, घर दीख रहा है।' यही जांहिड़ू पक्षी और काग प्रेयसी के दिल को हमेशा जलाते रहते हैं। कवे की कांए-कांए और जांहिड़ू की चूं-चूं उसे प्रेमी की याद को ताज़ा कराती रहती है। खैर ! अव जो प्रतीक्षा के वाद मिलन हो रहा है तो :—

हरी नगरा मौगरू, वाशंग नगरा चौला।
छौह म्हीने मीली झ़ूरीए बौरशे, ऐबे मिलणा गौला।

'हरी नगर में (पानी का) नाला, वाशंग नगर में दलदल है। छः महीने मिली, प्रेमिका, वर्ष के वाद अव मिलेंगे गले।' न केवल गले मिलना है, वल्कि इस लम्बी जुदाई में दोनों के दिन जैसे वीते हैं, उसका वखान भी होगा :—

रौई-तोसा-रे जंगला, शाण्हें ओसले गूणी।
बोहू दिहाड़े हुश्रा मिलणा, गला लोड़ी रांबड़ी ढूणी।

'रई और तोस (वृक्ष विशेष) के जंगल में टहनियों से उतरेंगे लंगूर। वहुत दिनों के वाद हुआ मिलन, वातें चाहिए ठीक-ठीक की।' जब जुदाई होती है तो ज़वान को भी ताला लग जाता है। वातें करें तो किस से करें। हर वात हर किसी से करने की नहीं होती। अतः प्रतीक्षा न केवल मिलने की होती है, वल्कि उस क्षण की भी होती है जव मन में संजोए भाव ज़वान द्वारा वाहर निकलेंगे। दिल खोल कर वातें होंगी। जुदाई का परदा हटेगा तो ज़वान का ताला खुलेगा, वह घड़ी आएगी तो मन में दवा खज़ाना वाहर निकलेगा। तव तक तो कितनी ही वातें सोच रखी हैं :—

माण्हूं काऊंछा, चार भूंईं री कोठी।
लोभी एणा सा दूरा पारा-न, गला डाहणी सोठी।

'व्यक्ति अकेला है, चार मंज़िल की कोठी में। प्रिय आएगा दूर-पार से, वातें रखना सोच-सोच कर।' चार मंज़िल का भवन हो और उसमें रहे केवल एक व्यक्ति तो उसकी क्या हालत होगी, यह वात सोचने से सम्बन्ध रखती है, कही नहीं जा सकती। वातें किस से होंगी ? दीवारों से ? हां तभी तो स्थानीय लोकोक्ति के अनुसार 'घर खाने को दौड़ता है।' तव घर से वाहर निकल कर आकाश के असीम सितारों को निहारते रहना दिल को वहलाने का वहाना वनाना है :—

तारा रेरूआ, तारे गिणदी भेजी।
तारे निभे गिणिया, थोग न्हीसी राती रा एज़ी।

'तारा रेरू को तारे गिनने भेजा । तारे समाप्त हुए गिन कर, पता नहीं रात का आ रहा (लग रहा) ।' किसी ने अच्छी तुकवन्दी की है—'सुबह होती है शाम होती है, यूं ही ज़िन्दगी तमाम होती है ।' प्रातः से दोपहर, दोपहर से शाम, शाम से रात । और यही क्रम सर्वदा जारी रहता है :—

भौर बियालीए मेरी भ़ूरीए, बटुहरू औधला खाऊ ।
तौ निहालदे भालदे चीड़ीए चौथा पौहर श्राऊ ।

'भर बियाली (रात का खाना) के वक्त, हे प्रिया, भटूरा (केवल) आधा खाया । तुझे निहारते-भालते, हे चिड़िया, चौथा पहर आ गया ।' समय बीतता जाता है, परन्तु मिलन की घड़ी निकट नहीं आती । प्रतीक्षा की कोई अवधि नहीं । कब तक प्रतीक्षा रहेगी, इसका अन्दाज़ा नहीं है और फिर वही शिकायत :—

फूल फूले बराहा-रे, भौर फूलले गूने ।
छ़े के केरी घौरा-बे फीरना, दिहाड़ा न्हौठा भेखली बूने ।

'फूल खिले हैं बरास के, खूब फूले हैं गूने (के फूल) । शीघ्र करना घर को चलना दिन छुप गया है भेखली (गांव) के नीचे तक ।' और यदि प्रतीक्षा के बाद भी आने की आशा निराशा में बदल जाए तो क्या भावना जाग सकती है :—

बूटी झ़ालरू ठिंगरी पौकली दाशा ।
शौऊ कोहा रा रस्ता म्हारा, हेरी केरदी श्राशा ।

'वृक्ष झालर वाला चोटी पर पकी हैं दाशा (फल विशेष) । सौ कोस का रास्ता है हमारा, मत करना आशाएं ।' इतनी लम्बी दूरी कब पूरी होगी, अतः हृदय में रहते हुए भी शारीरिक रूप से दूरी हमें कोसों दूर रखे हुए है । नयन मिले तो पहचान हुई परन्तु यह पहचान कब पूर्ण सहयोग में परिणत होगी, उस समय की प्रतीक्षा बनी रहेगी :—

श्राऊ शाऊण, न्हौठे लाहुला गौदी ।
हौछी मिलिया हुई बौरशा, हौथड़ू मिलणा कौदी ।

'आया है सावन (का महीना) गये हैं लाहुल को गद्दी लोग (अपनी भेड़ों के साथ) । नगन मिले बरसों बीत गए हैं; हाथों का मिलन होगा कब ?' मिलन की उस आशा की घड़ी को कब तक ताकते रहें । दिन का समय तो काम-धन्धे में बीत जाता है, परन्तु रात कैसे बीत पाएगी । नींद तुम्हारी याद में कोसों दूर भागती है । यदि नींद आ भी जाए तो तुम्हारी तस्वीर सपनों में सामने आ जाती है :—

उथड़ी धारा-न काइली जोंदरे केलू ।
दिहाड़ी खाई कोमे रे धोंगचे, राती लोड़ी सुपने मेलू ।

'ऊंची धार पर कायल वृक्षों के बीच केलू (देवदार) का वृक्ष है । दिन को खाया

(मुझे) काम के झंझट ने, रात को चाहिए स्वप्न में मिला।' काइल-चील वृक्षों के समूह में किसी एक देवदार के वृक्ष का होना उतनी ही विचित्र बात है, जितनी भरी भीड़ में प्रेमिका अपने आपको प्रेमी की जुदाई में अकेला अनुभव करती हो। तब उसे वह दिन रह-रह कर याद आता है जब प्रियतम उससे जुदा हुआ था :—

नौदी बी नौदी हौरी नगाली री नौदी।
आौज चौले हौथ मलाया, औजके मिलणा कौदी।

'नाली भी नाली हरी निरगाल (एक बांस विशेष) की नाली है। आज चले हो हाथ मिला कर आज के बाद मिलन होगा कब।' उस दिन की प्रतीक्षा रहेगी जब पुनः मिलन होगा। वह दिन कब आएगा ? इसका कोई यकीन नहीं। तभी लिख भेजती है :—

चित्रा चाधरू बशणोई धारीए, सारा लेमकू लौहे।
छके केरी जबानी रा बदला, दिहाड़े गिणुए रौहे।

'चित्रित पट्टू बशणोई धारी (एक प्रकार का डिजाइन) का सारा कीड़े ने चाट लिया। शीघ्र करना ज़बान का बदल दिन गिने रह गए हैं।' अब तो सबर का प्याला भर गया है। यदि अब भी प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त नहीं होती तो इसका क्या परिणाम होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। हे प्रिय, अब शीघ्र आ जाओ मैं प्रतीक्षा में बैठी हूं।

बियाली रेश्रा पौहरा, लाल भौकदी गेठी।
खड़े-खड़े एजी लोभीया, हाऊं निहालदी बेठी।

'बियाली (रात के भोजन) के इस पहर में लाल जल रही है अंगीठी। खड़े-खड़ आ जाना प्रिय, मैं हूं प्रतीक्षा में बैठी।' दिन के समय बेशक काम-धन्धे में दिल बहल जाए परन्तु यह अन्धेरी और लम्बी रात कैसे बिताई जा सकती है। परन्तु प्रिय है कि रात भर नहीं आया। क्या रुष्ट होकर गए थे कि रात भी खुल गई परन्तु जिस से खड़े-खड़े आने की आशा थी वह आया नहीं :—

पीणी पीछे पिणसू, चौकी पीछे मलाणा।
झूरीए खोंजू रुशणा, रातीए बूझू भियाणा।

'पीणी गांव के पीछे पिणसू गांव, चौकी के पीछे मलाणा गांव। प्रेमिका बैठ गई रुष्ट होकर, रात ने सोचा खुल जाना।' हे प्रिया, तुमने आज मुझसे नाराज़ होने का अवसर ढूंढा। मैं सारी रात मनाता रहा परन्तु तुम मानने में नहीं आई और रात खुल गई। मानो तुम्हारे रूठने और रात के खुलने में मुकाबला लगा था। रात खुल गई परन्तु तुम नहीं मानी।

———

स्मृति

मनुष्य को यदि स्मरण-शक्ति का अमूल्य वरदान प्राप्त है, तो इस शक्ति ने उसे सताया भी बहुत है। जब कभी किसी की याद आती है तो इस याद में शरीर और मन को जो पीड़ा होती है वह अकथनीय है :—

ढेका फूलू कुसमा, बेउड़ी फूली पदीनी।
जेबे आई झ़ूरी री सोठणी, मोंझ़ समुंद्रा धीनी।

'ऊपर की ओर कुसुम फूल फूला है, नीचे खिला है पदीना। जब आई प्रेमिका की याद, बीच समुद्र में दे दी।' प्रेमिका की याद सहन नहीं की जाती। शरीर सुन्न हो जाता है और हृदय व्याकुल हो जाता है :—

म्हारे धीरे चौला पाहुणे, चाकटी पीणी की सौरा।
याद लागी एजादी झ़ूरी-री, फौकड़ी फीरू काल़जा हौरा।

'हमारे घर चलो मेहमान, चाकटी पीओगे या शराब ? याद आ रही है प्रेयसी की, हृदय और कलेजा हो गया है हरा।' तेरी याद में खून सूख गया है। हृदय और कलेजा भी पक गए हैं। जहां जाता हूं तेरी याद साथ रहती है :—

झ़ांगीया कुकड़ कौउंरी पांधा–न रौता।
सोठू लोड़ी साथरे, रूणी लोड़ी पाणी री बौता।

'बांग देता मुर्गा गर्दन पर लाल। सोचा चाहिए बिस्तर में, रोई चाहिए पानी के रास्ते में।' न सो कर चैन है, न काम करते तुम्हारी याद जाती है। दिल की ऐसी हालत है जैसे घराट की, जो फिरता ही रहता है, एक जगह टिकता नहीं। याद में दिल की हालत फिरते घराट के समान है :—

जोतड़ू पांधला गाश, लागदा–लागदा शौहू।
छ़ेके केरी जबानी रा बदला, दिल घौरठ फिरदा रौहू।

'पर्वत पर की वर्षा, बरसते-बरसते थम गई। शीघ्र करना ज़वान का बदल, दिल

घराट फिरता रह रहा है।' कारण स्पष्ट है। किसी की याद दिल को एक स्थान पर टिकने नहीं देती। चाहने पर भी दिल फिर-फिर कर वहीं पहुंचता है। याद तो संदेशवाहक की भान्ति है :—

फूले भौरी भूरल, ल्होसरे भौरीरा कोंडू।
लोभी सा बेशी रा दूरा देशा-न याद सा एजीरी छोंदू।

'फूल से भरी है भूरल, ल्होसर से भरा है कोंडू (बांस की टोकरी विशेष)। प्रियतम है बैठा दूर देश में, याद है आई उसकी संदेशवाहक।' और जब यह संदेशवाहक पहुंचती है तो दिल की व्यथा सुनाई नहीं जा सकती। यह कैसे कहा जाएगा कि दिल की बेचैनी का क्या कारण है। यह दिल की पीड़ा ऐसी है जिसका वर्णन नहीं हो सकता :—

हेठे सौहरा पीछे नांगा री बागा।
नेड़ थी बोलणा शाहुरा, बुरा कौसरा लागा।

'नीचे शहर और पीछे नांगा की बाग जगह है। निकट था कहते हैं ससुराल, बुरा किसका लगा है।' हां निकट होते हुए भी यदि शारीरिक रूप से दूर हों तो मानसिक पीड़ा अकथनीय है। यही नहीं मानव शरीर नश्वर है। मानव चला जाता है, परन्तु उसकी याद हमेशा रहती है :—

नाला चिणनी डेहरी, धारा चिणनी कोठी।
माणहू जाआ सी औली-पौलिया, ठउड़ डाहणे सोठी।

'नाले में बनानी है डेहरी (छोटी कुटिया) धार पर बनानी है कोठी। मानव जाता है गिर-पड़ कर, स्थान रखने सोच कर।' मित्र कहां मिला था, कब मिला था, कैसे मिला, उसने क्या कहा ? यह सभी बातें मानस-पटल पर तब उभर आती हैं, जब वह पास नहीं होता। जब तक पास है तब तक शारीरिक उपस्थिति सोचने की ज़रूरत महसूस नहीं करती। ज्यों ही अनुपस्थिति आई, यादों का भार मन को आ घेरता है। तब याद आती है उन बातों की जो प्रिय से हुईं। क्या मुझ से बात करते हुए भूल हुई है ? क्या मेरी बात को ठीक नहीं समझा गया :—

राती बियालीए मेरे लोभीया, फियाड़े शुजुए तेरे।
ऊंघ खोंजू भौरे धुआं रा, टेंडलू भौरूए मेरे।

'रात खाना खाते हुए हे प्रिय, बातें याद आईं तुम्हारी। बहाना लगाया भरे हुए धुएं का, आंखें भर आईं मेरी।' याद आने का भी कोई समय है ? न जाने यह ज़ालिम कब आएगी। रात को खाना खाते ही याद ने जब आ घेरा तो आंखें

आंसुओं से भर गईं। भला इन आंसुओं को कैसे छुपाती। ये तो डब-डब वह गए। तब क्या हो सकता था ? धुएं लगने का बहाना करना पड़ा। हे प्रिय, क्या तुझे मेरी याद नहीं आती ? क्या यह याद केवल मुझे सताती है ? यदि तुझे भी याद आती है तो तुम आते क्यों नहीं हो ? क्या तुम्हें किसी ने वांध रखा है :—

लाहुल़ा चौरली भेड़ा-बौकरी, बाल्हा चौरली घोड़ी।
जेबे एली लोभीया सोठणी, श्राऊ लोड़ी शांगल़ चोड़ी।

'लाहुल में चरेंगी भेड़-बकरियां, वाल्ह में चरेंगी घोड़ियां। जब आएगी हे प्रिय ! याद, आया चाहिए जंजीर तोड़ कर।' यदि तुम नहीं आ सकते और मेरी खबर आज नहीं लेते तो बाद में पछताओगे :—

शेतो काथी रा लोगड़, काल़ी काथी रा शोठू।
एबके केरी झूरना, बाह़ी लोड़ी बास्ता सोठू।

'सफेद काथी (एक झाड़ी विशेष) की लाठी, काली काथी का सोठा। अबके करना प्रेम, (अन्यथा) बरसात में सोचोगे।' समय पर प्रतिक्रिया न हो तो बाद में पछताना तो स्वाभाविक है।

हिन्दी के प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास ने कहा था "बांह छुड़ाए जात हो निर्बल जान के मोही। हृदय से जब जाओगे, मरद बखाने तोहे।" ऐसी ही बात एक कुलुई दोहे में आती है :—

जोथ लागी चनण, सीकी आपणे रंगे।
होछी कोना-न रहीठा लोभीया, दिल-सा मना-न संगे।

'चन्द्रमा लगी है चांदनी, चली अपने रंग में। नयनों और कानों से गुम हो गए हो प्रियतम, परन्तु दिल है मन में साथ।' रात चन्द्रमा के प्रकाश से सुनहरी हो तो विरह के दो दिलों की जो दशा होती है, मानों उसका चित्र आकाश के चन्द्रमा पर अंकित हो। भले ही आंख से ओझल और कान से दूर हों, परन्तु हृदय से प्रियतम दूर नहीं रह सकते। दिल में उनका स्थान हमेशा बना रहता है। नज़र निस्सन्देह न आए, कानों में बात न पड़ती हो। शारीरिक स्थिति दूर हो परन्तु मन में जो याद है, वह दूर नहीं की जा सकती। कितनी कोशिश की जाए यह याद दिल से नहीं जा सकती। इतना ज़रूर है कि दिन के समय हाथ के काम के कारण याद झुठलाई जाती है, परन्तु रात को उसे कैसे दूर रखा जा सकता है :—

फेटी बाल्हा-न भूजा पराल़ा रे कोठे।
दिहाड़ी खाई कोमे रे धांगचे, राती खाई लोभी री सोठे।

'समतल वाल्ह क्षेत्र में भूस और पराली के कोठे (लगे हैं)। दिन को खाया (मुझे) काम के झमेले ने, रात को खाया मुझे प्रेमी की याद ने।' वास्तव में रात-दिन कोई चैन नहीं है। इस संघर्षमयी जीवन में केवल दो बातें हमेशा साथ दे रही हैं :—

धारा बेढ़ा-न खोखण, डूघे नाला-न रेरी।
एक सोठणी हुके-तमाकू री, दूजी सोठणी तेरी।

'धारा वेढ़ में खोखण (गांव) और डूघे नाला में रेरी (गांव)। एक सोच हुक्के तंबाकू की और दूसरी सोच तेरी (मेरे दिल को जलाए जा रही है)।' और याद भी तब प्रबल हो उठी जब प्रियतम की निशानी मिल गई है :—

बीभे सौरगा नीली-पींऊली रेहा।
लोभी न्हौठा दूरा-पारा री नोकरी, फूल भेजू नसेहा।

'निर्मल आकाश में नीली-पीली (बादल की) लकीरें। प्रियतम गया दूर-पार की नौकरी, फूल भेजा है निशानी।' इस निशानी ने जो हालत बना रखी है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। यों ही तेरी याद दिल को घेरे बैठी है, परन्तु फूल को देखते हुए दिल में ऐसी आग लगी है, जैसे चील के बिरोज़े को आग जला देती है :—

भेड़ा चारी पुहालूए, गूजर चारले मेंही।
छाती भौकी लोभीया तेरी यादी-न, चीले रे सेलरे सेंही।

'भेड़ें चराई पुहाल ने, गूजर चराएंगे भैंसें। छाती जली है प्रियतम, तेरी याद में चील के बिरोजे की तरह।' या :—

घीऊए भौरी कुँधड़ी, तेले भौरी री कूपी।
जेबे एली झूरी री सोठणी, छाती जौली आगी री लूपी।

'घी से भरी है कुंधड़ी (मिट्टी का छोटा बर्तन), तेल से भरी है कूपी। जब आएगी प्रेमिका की याद, छाती में जलेगी आग की ज्वाला।' छाती में आग जल रही है, और उधर इसी याद में गुल्हरू बबरू जैसा अच्छा स्वादिष्ट भोजन भी गले में फंस रहा है। प्रेमिका की याद में वह मीठा भोजन भी गले से नीचे नहीं उतरता।

देउआ देवी रे मुख मोहरे, थाना-पताला रे बौते।
डाइणी साजा रे गुल्हरू-बौबरू, केण्डे गौला-न शौते।

'देवी-देवता के मुख-मोहरे और थान और पताल (देवताओं) के पत्थर (प्रायः पूजा के पात्र होते हैं)। डांकिन त्यौहार के गुल्हरू-बबरू (विशेष भोजन) कैसे

गले में फंस रहे हैं।' क्या कारण है तुम्हें इतना सुन्दर भोजन भाता नहीं। किस की याद ने तुम्हारी भूख-प्यास को मार दिया है। अरे ! कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारी याद उसकी हो जो तुम से नाता तोड़ कर चले गई है :—

हेठे सड़का ऊभ्के साधू री कूटी ।
बोहू मौत लड़-फड़ाइन्दा जुण सा जाइरी चूटी ।

'नीचे सड़क ऊपर साधू की कुटिया है। बहुत मत व्याकुल हो (उसकी याद में) जो गई है (नाता) तोड़ कर।' नहीं, वह नाता तोड़ कर नहीं गई है, क्योंकि वह भी बड़े सुन्दर शहर में रहते हुए भी मेरी याद में व्याकुल हुई खुश नहीं है :—

गौटी बी गौटी शेगड़ नाले री गौटी।
रिझ न्हीसी लागी सेरी-बेढ़ा-न, माण्हू मना-रे घौटी।

'कंकर भी कंकर शेगड़ नाले की कंकर है। चैन नहीं आ रहा है सेरी बेढ़ में, आदमी दिल के बगैर।' न दिल को चैन है न मन को आराम, कैसे जीवन बीत रहा है, क्या कहूं :—

तोसा केलू रे तखते, रौई काइली री काती।
पौहर निहालदे दिहाड़े जाश्रा सी, पाशड़ बौदले राती।

'तोस और केलू के तख्ते, रई और कायल (वृक्षों) की शहतीरें बनती हैं। पहर की प्रतीक्षा में दिन बीतते हैं, करवटे बदलते रातें गुजरती हैं।' या फिर हिचकियां भरते-भरते समय निकल जाता है :—

झचे उझी रे नोचदे बांके, छोकरे लौगा रे रागी ।
कीबे लागीए डिकली झूरीए, याद कुणी री लागी ।

'झचे ऊझी वादी के नाचने में अच्छे हैं, युवक लग के राग-गीत में चतुर हैं। क्यों लगी हैं हिचकियां प्रिया, याद किसकी आ रही है।' इसी तरह :—

कोदरा पौकू डूंडुए, जौ गेहूं री सीला ।
याद आई तेरी लोभीया, रोटी छूटी गेठे रे बीला ।

'कोदा पका है गुच्छों में, जौ और गेहूं के सिट्टे पके हैं। याद आई तेरी प्रिय, रोटी रह गई अंगीठी के किनारे पर।' याद भी कितनी दुष्ट है कि खाना खाते समय ही आती है, और भोजन भी खाना नहीं मिलता। याद बिना रोग के रोग है। शरीर में बीमारी नहीं, परन्तु मन को किस बात का कष्ट है ? :—

काठा री कुहड़ी, पाणी खोंझणा डीबे ।
दाह नी थी दुःख काया-बे, छाती रा भलका कीबे ।

'काठ की बनी बावड़ी, पानी निकालना है डिबिया से। दर्द नहीं था दुःख शरीर को, छाती में भड़क किस बात की ?'

——

जीवन की सचाइयां

लोकमानस अनुभवों का खज़ाना होता है। समाज के असल नियम उन के अनुभव हैं। लिखित विधियां भी मूल रूप में समाज द्वारा प्राप्त अनुभवों की संचित तथा लिखित रचनाएं हैं। मूल रूप में मानव किसी समाज विशेष में रहते हुए जो पाता है या खोता है, उसी पाने और खोने में उस की भविष्य के लिए की जाने वाली गतिविधियों का समाधान समाविष्ट रहता है। सभी बातें कानून का रूप धारण नहीं करती। केवल वही अपेक्षाएं विधियां बनती हैं जिन के उल्लंघन से किसी दूसरे के अधिकार को क्षति पहुंचती है। शेष अनुभव लोकमानस पर उपदेश के रूप में अंकित रहते हैं। यही अनुभव लोकोक्तियों का रूप धारण करते हैं या ये लोक गीतों की पंक्तियों और पदों के रूप में स्थायित्व ग्रहण करते हैं। दोहों और लामणों में भी इनका समावेश बड़ा विशिष्ट और व्यापक है। जीवन क्या है ? कितना लम्बा है, उसमें क्या प्राप्त होता है ? सुनिये :—

जोथ निकती चनण, सीकी आपणे रंगे।
दूई दिहाड़े री जिंदगी, बिपता मौड़ाबे संगे।

'चन्द्रमा निकला है प्रकाश के साथ, चला है अपने रंग में। दो दिन का है जीवन, परन्तु विपत्ति (कष्ट) घातक साथ रहती है।' सुख तो मानव के जीवन में केवल दो घड़ी के लिए मिलता होगा, अन्यथा सारा जीवन कष्टों और मुसीबतों से भरा है। दो दिन की जिंदगी हो या दीर्घायु परन्तु दुःख तो जीवन साथी है। वह साथ चलता रहता है :—

माणू री जिंदड़ी जौऊ री पिपरी हौरी।
सुख सा नींजा रा टुल्हकू, दुख सा उमर भौरी।

'मानव का जीवन जौ के नर्म हरे पौधे की तरह है, सुख है केवल नींद की झपकी, दुख है उमर भर।' जिस प्रकार जौ का नाजुक और कोमल पौधा वर्षा और धूप के मामूली आक्रमण को सहन नहीं कर सकता। उसे ऋतु की अनुकूलता अपेक्षित है, वैसे ही मानव का जीवन है। इसे भी पनपने के लिए

अनुकूल वातावरण की अपेक्षा है। परन्तु विडम्बना देखिए *जीवन में सुख तो* क्षणभंगुर है और दुख हमेशा साथ रहता है। यह दुख तभी खत्म होता है जब प्राण निकल जाते हैं और तब वह दुख किसी और के हिस्से आता है।

घौरठा पीशी कोणक, उखल् चाउल् दौले।
मौरनू आले न्हौठे मौरिया, जिंदे रे सेंइसे जौले।

"घराट में पीसी कनक, ऊखल में चावल दले गए। मरने वाले गए मर कर, जीते की चिंता में जल रहे हैं।" इस प्रकार :—

साजा शौईरी, चाउल् माहा री दौली।
मुँए रे जलबे विसरे, जिंदे रे ज़लबे जौली।

"त्योहार शैरी (के अवसर पर) चावल और माश की दलियां (बनाई गईं)। मृतक की चिंता (याद) भूल गई, परन्तु जीते की चिंता से जल रहे हैं।"

मृत्यु के अवश्यमेव होने और जीवन की कठोरता की वास्तविकता के प्रति सजगता के कारण ही प्राचीन समय से "यावत जीवेम् सुखम् जीवेत, ऋणम् कृत्व घृतम् पीवेत" जैसी धारणाओं को जन्म दिया है, जन्म ही नहीं वरन् एक समाज का यह शाश्वत सिद्धांत रहा है। यही भावना कुल्लू के समाज में ज़ोर पकड़ गयी है :

धारा चौरला घोरड, चाहड़ी चौरला बीणा।
मौज केरी जींदे जीउए, केती जलमा जीणा।

पर्वत शृंखला पर चरेगा घुरल (जंगली भेड़ा) और चट्टानों पर चरेगा वीणा (कस्तूरा)। मौज कर ले जीते जी कितने युग जीना है।" यही जीवन है जिसमें सुख दुख का अनुभव होता है। यदि मनुष्य को इस जीवन में सुख न मिला तो दूसरे जन्म के सुख की आशा में कष्ट झेलना मूर्खता है। जिस परिश्रम का फल इसी जीवन में प्राप्त नहीं होता उसकी आशा दूसरे जहान के लिए बांधना अपने आप को धोखा देना है। वर्तमान के कार्य का फल वर्तमान में ही मिले ऐसी आशा रहती है। यही कारण है कि समाज में सुख से रहने और मरने पर दुख न मनाने की धारणा चल पड़ी है :—

देऊ डाहू डेहरे, देवी बेठी मण्ढारा।
जींदे जीऊए केरी झूरना, मौरिया फूले री हारा।

"देवता रखा है मन्दिर में, देवी बैठी है मण्डार (मुख्य मन्दिर) में। जीते जी कर लेना प्यार, मर कर देना फूल का हार।" मरने पर पछतावा किस बात का। जीते जी जो प्यार और सुख दिया जा सकता है, दे दिया जाये। यदि जीते जी किसी को सताया जाए, या स्वयं जीते जी कोई सुख न लिया तो मरने

पर पछताना निरर्थक है। मरने पर फूलों की माला पहनाई जाए। जैसे मृत्यु सत्य है वैसे बुढ़ापा भी निस्सन्देह आएगा। इसलिए जो कुछ करना हो जवानी में किया जाए, बुढ़ापे में जब शरीर क्षीण हो जाएगा तो फिर पछतावा फजूल है :

घौणे जंगला जोड़े लागे चरानी।
सदा नी रौंहदा शाउण भादरू, सदा नी रौंहदी जुआनी।

"घने जंगल में जोड़ा चिरानी (लकड़ी के चीरने के काम में लगे हैं।) सदा नहीं रहते सावन और भादों के महीने, सदा नहीं रहती जवानी।" जन्म, जवानी और बुढ़ापा जीवन-यात्रा की वही मंजिलें हैं जिन से अवश्य गुज़रना है। इस धारणा में केवल 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' की भावना ही बलवान नहीं है, बल्कि असल में मनुष्य को समय पर काम करने के प्रति उपदेश भी है और कार्य के प्रति मर्यादा भी दिखाई गई है। मरने पर मनुष्य का शरीर किसी काम का नहीं। जो उसने जीते जी कमाया है वही पीछे रहता है, उसी के कारण मनुष्य का नाम अमर रहता है, अन्यथा शरीर तो नाशवान है ही :—

दिहाड़ा न्हौठा उड़िया, न्हौठा तरांबली पीछे।
भाण्डे फुटिया ठीकर, माण्हू नी मौरिया कीछे।

सूर्य गया उड़ कर (अस्त हुआ), गया तरांवली (गांव) के पीछे। बर्तन टूट कर ठीकरे (बन जाते हैं), मनुष्य के मरने पर कुछ नहीं बनता।" शरीर जल कर राख बनता है। बाइबल का उपदेश ठीक ही है 'मिट्टी के तुम हो, मिट्टी में मिल जाओगे (Dust thou art dust returnest)।' परन्तु जहां एक ओर कष्ट करके भी अच्छे और शुभ कार्य करने का उपदेश है, वहां दूसरी ओर केवल मौज करने का संकेत है :—

सेऊ लांघू भूइण, जोतड़ू लांघू जलोड़ी।
होर देई डिगणे, मना री मौज लोड़ी।

"पुल पार किया भोंतर का, जोत अबूर किया जलोड़ी का। और देना छोड़, मन की मौज चाहिए।" परन्तु इस धारणा का सदैव प्रभाव नही है। साथ संयम की बात भी है :—

भेड़ा पुहालुआ दुखे चारला की सुखे।
थोड़ा-थोड़ा खाई बौता रा खर्च, लाहुल मौरला भूखे।

"हे पुहाल (गडरिया) भेड़ें दुःख के कारण चराएगा या सुख के कारण। थोड़ा-थोड़ा खाना रास्ते का खर्च, अन्यथा लाहुल में मरेगा भूख से।" किफायत की जरूरत है। यदि आज बचाओगे नहीं तो बाद में भूख से

मरोगे। सुख में तो सभी साथ देते हैं। जब खर्च करने के लिए जेब भारी है तो मित्र बहुत मिलेंगे, परन्तु हाथ तंग होगा तो मित्र भी साथ छोड़ेंगे :—

सूने री सीउण सूरजो भेजी सरोई।
सुखे रे साथी सारी दुनिया, दुखा रा साथी नी कोई।

"सोने की सूई (सूचिका) सूर्य ने भेजा है तैयार करके। सुख के साथी सारी दुनिया है, दुख का साथी कोई नहीं।" लोकमानस ने कितनी सचाई कही है। इस संसार में सुख के समय कितने ही साथी मिलते हैं। परन्तु कष्ट आया तो सब साथ छोड़ देते हैं। कोई साथ नहीं देता। हर कोई किनाराकशी करता है। किसी के कष्ट या दुख के निवारण की बात तो दूर रही, दुख की केवल बात सुनने को भी तैयार नहीं होता :—

मुंझग बाई रा मौगरू, कोटा धारा री तीके।
दुःख सुख ढुणना धीना डिगणे, आपणे रस्ते सीके।

"मुंझग बावली की नाली, कोटा धार के सामने है। दुख सुख कहना दिया छोड़, अपने रस्ते खिसक गये।" जब अपनी स्थिति अच्छी न हो तो मित्र दोस्त साथ छोड़ देते हैं। अपने परायों का पता तो कष्ट के दिनों में ही लगता है। अगर जेब में किसी के लिए देने को कुछ नहीं है तो कोई भी साथ चलने को मिल नहीं सकता :—

घौरा आगे जोड़े शाढ़े री बूटी।
देणे बे नी रौहू मेरे होथा-न, धाउड़ी भाइडी चूटी।

"घर के आगे जोड़ा खुरैमानी के वृक्ष हैं। देने केलिये नहीं रहा मेरे हाथ में, अधूरी मित्रता टूट गयी।" सभी ओर स्वार्थ और लालच भरा है। किसी को किसी से सहानुभूति नहीं। ऐसे समाज में सतर्क रहने की आवश्यकता है :—

नरेल चंदी री खोड़े-रे लागले मीरू।
पालू छौंगिया केरी हुंडणा सोमा लालची फीरू।

"हुक्का चांदी का, अखरोट की लगी है नड़ी। पल्ला बचा कर चलना, समय लालची हो गया है।" लालची अकेला ही नहीं समाज में विरोध, वैर, शत्रुता ने ज़ोर पकड़ लिया है :—

बीभे सौर्गा तारा निकता हीरू।
नीमती केरी लोहू री नज़रा सोमा ऐबी फीरू।

"निर्मल आकाश में तारा निकला हीरा। नीची करना लोहू की नजरें, समय (समाज) ऐबी फिर गया है।

फुटकर

कौंधे भौरी तुबक लान्ही चोड़ी रा हेड़ा।
दुखे रे जाणा मूड़ी बे सुखे री चारनी भेड़ा।

"छोटी चिड़िया का शिकार खेलने के लिए कंधे पर बन्दूक रखी है। जिसको दुःख होगा वह मज़दूरी करने जाएगा और जिसको सुख होगा वह भेड़ें चराएगा।"

चितरे चाधरू धारी भौरी कधारी।
तू नी शुणदी आमा बापू री तौ कौ शुणनी म्हारी।

"चित्रित पट्टू में ऐसी धारियां डाली गई हैं जो कि एक दूसरे से मेल नहीं खातीं। तू अपने माता-पिता का कहा नहीं मानती, हमारा कहा तो कहां मानेगी।"

बालू सुना रा शाहूकारा रा बांधा।
नेड़े री झूरी सा सट-दुहारा-बे दूरा री जानी बे धांधा।

"सोने का बालू (नाक का आभूषण) साहूकार का गिरवी है। पास का प्रेम उधार आदि के लिए है और दूर का प्रेम जान के लिए एक मुसीबत है।"

मेटी फूली कुसमी बेउड़ी फूली जूही।
दस दुनिया देई बोलणे, मिलिया रौहणा दूही।

"ऊपर कुसमी फूल खिला है और नीचे जूही फूल। दुनिया को बोलने दो, हम दोनों ने तो मिलकर रहना है।"

शील्हे नाला-न डोबी रिन्हे क्याऊं।
खांदी-पींदी हुई दस दुनिया, बौली बे बौकरू देंदा हुआ हांऊँ।

"शिल्हे नाले (ऐसा नाला जहां धूप न जाती हो) में डिब्बे में क्याऊं

(सब्जी विशेष) पकाए हैं। खाने-पीने के लिए दुनिया है और बलि के लिए बकरा देने के लिए मैं।"

धारा चौरले घोरड़ -काकड़, चाहड़ी चौरला बीणा।
लोभी चौलू दूरा पारा-बे कुणी बुधिए जीणा।

"ऊंची धार पर घोरड़-ककड़ (जंगली बकरे) और पथरीले पहाड़ पर कस्तूरा चरेगा। प्रेमी दूर-पार जा रहा है अब मैं कैसे जीऊंगी।"

फेटी बाल्हा-न हौरे घाहे री छानी।
तू ढौकुई बडे बड़े-न छौड़ गरीबे री जानी।

"फेटी वाल्ह में हरे घास की कुटियाएं बनी हैं। तूने तो बड़े बड़े का सहारा पकड़ा है इसलिए मुझ गरीब की जान छोड़ दे।"

जोथ लागी चनण मोंझ सरगा डूबी।
मेरी एसा रोझे री झूरी-बे, कौसरी नजर खूबी।

"प्रकाशमान चंद्रमा आकाश के बीच में डूब गया (बादल की ओट में चला गया)। मेरी इस दिल की प्रेमिका को किस की नज़र लग गई है।"

पेछै ढौगा रा बौगड़ा डुंगरी ढौगा रा तूला।
घौर ता बौसू तिन्हारी खाणीए, जाणी नी जोंघे री पूला।

"पेछे पहाड़ का बौगड़ा घास तथा डुंगरी पहाड़ का तूला घास प्रसिद्ध हैं। तूने शादी तो कर ली परन्तु तुझे तो पूलें (घास की जूतियां) बनानी भी नहीं आतीं।"

हेठे सोमसी पीछे नागणी सौरा।
किबे धीनी आमा बापुऐ, बीणी दिले रे घौरा।

"नीचे समसी तथा ऊपर नागणी सरोवर है। मेरे माता-पिता ने ऐसे घर में मेरी शादी क्यों की जिसे मेरा दिल नहीं चाहता था।"

बूटी बी बूटी चिला-केलू री बूटी।
लोभी चौलू घौरा-बे बड़े हुई दिना री छूटी।

"सभी वृक्षों में चील और देवदार के वृक्ष प्रसिद्ध हैं। प्रेमी अपने घर जा रहा है क्योंकि बड़े दिनों की छुट्टी हो गई है।"

पुलगा बोणा-न छुंछरू चुंघा सा की छौछी।
लोभी आऊ पाहुणा जोंघड़ू देई छौशी।

"पुलग के जंगल में गुच्छियां चुन रही है या छौछी (mushroom)। प्रेमी तेरा महमान आया है उसके पैर आदि की मालिश कर देना।"

घाह लुणनू आली घाहणीए घाह लुणा सा की तूली।
किता केरी जुआनी न झूरना, किता लोड़ी उमर रूली।

"हे घास काटने वाली ! तू घास काटती है या तूली। या तो जवानी में प्रेम करना, नहीं तो सारी उमर भटकना पड़ेगा।"

मुँझग बाई रा मौगरू कोट घारे री तीके।
थोड़ी झूरी लाणी लोभे लालचे बोहू लोके री झीके।

"मुंझग बावली का चश्मा कोट धार के सामने है। लोभ-लालच के कारण कम परन्तु लोगों से ईर्ष्या के कारण अधिक प्रेम करेंगे।"

शिल्हे नाला—न डिबे चुँघे क्याऊं।
होरा लोका सी गला-बाता-बे, दुखा सूखा-बे हाऊं।

"शिल्हे नाले में डिब्बे में क्याऊं (सब्जी विशेष) चुने हैं। और लोग तो बात-चीत के लिए हैं, दुःख-सुख का साथी तो केवल मैं हूं।"

खाढ़े सेऊआ रे तख्ते, भूइण सेऊआ रे मेजू।
बिदा आई बोलना दसमी, फूल लोड़ी डाबू-न भेजू।

"अखाड़े के पुल के तख्ते तथा भूइण पुल के मेजू सुन्दर हैं। हे प्रेमिका, विजय दशमी का त्योहार आ गया है, इस लिए डिब्बे में फूल भेज देना।"

काचे रंगे री ढोलकी पके रंगे रे तारे।
ओरे पोरे हेरी झूरीए भालदी, टके सी लागी रे म्हारे।

"कच्चे रंग की ढोलक पर पक्के रंग की तारें हैं। हे प्रेमिका ! इधर-उधर न देखना क्योंकि हमने तेरे लिए पैसे खर्च किए हैं।"

कुलू मोंझे गड़सा मांडी मोंझे टकोली।
बुरा हेरी झूरीए बुझदी, म्हारे गोई देशे री बोली।

कुल्लू में गड़सा तथा मण्डी में टकोली स्थान प्रसिद्ध हैं। हे प्रेमिका ! बुरा न मानना, हमारे देश की बोली ही ऐसी है।"

औधा लिखी उड़दू, औधा लिखी अंग्रेजी।
झूरी थी शोभली हौथा न्हीसी कौसी रे एजी।

"आधा उर्दू में लिखना तथा आधा अंग्रेजी में। नायिका तो सुन्दर है परन्तु किसी के हाथ नहीं आ रही है।"

गौहरी देऊआरे डेहरे थोमें मरोढ़ुआ कीड़ा।
तू आणी पाणी रा लोटकू, हाऊं आणनू बेढ़ ई सीड़ा।

"गहरी देवता के मन्दिर के खम्बे में सांप लिपटा है। (हे प्रेमिका !) तू पानी का लोटा ले आना, मैं सीड़ा (पानी में पकाई मोटी रोटी) लाऊंगा।"

केलू काइली पौऊ झगड़ा शेगल केरला पंची ।
हांऊ देनू ओकती हाड़ा लोड़ी हाड़ा-न रंची ।

"देवदार तथा चील के पेड़ में झगड़ा हो गया है जिसका फैसला शेगल का पेड़ करेगा । मैं तुम्हें दवाई दूंगा जो तुम्हारी हड्डी-हड्डी में पहुंच जानी चाहिए ।"

शेता तेरा कागज नीली तेरी स्याही ।
माघ लागा बोलना शौहरी, म्हारे लोड़ी बाँडे री डाही ।

"सफेद कागज़ है और नीली स्याही । माघी और सैरी सग्रांत लगी है इस लिए हमारे हिस्से की रखना ।"

सोमसी बाल्हे री दुधली, खोखण सेरी रा खूरा ।
लोका देई बोलणे, झूरी रा भलका बूरा ।

"शमसी वाल्ह में दुधली तथा खोखण के खेतों में खूरा (घास) बहुत होता है । लोग कुछ भी कहें प्रेम का रोग वहुत बुरा होता है ।"

ओरे ढाढग पोरे बोली जियाणी ।
पोरे खोल एई मुंडा रा झूमण, खापर होली की याणी ।

"इधर ढाढग गांव तथा उधर ज़ियाणी गांव पड़ते हैं । सिर पर का घूंघट हटा दे, देखें तू बुढ़िया है या जवान ।"

मणीकरणा ठांडी तौती भरोशा ।
सुती बेठी केरी ती धाचणी, दोथी लाई चौकणी झीशा ।

"मणीकरण में ठंडे तथा गर्म पानी के चश्मे हैं । वायदा तो यह हुआ था कि बैठी-बैठाई को पाला जाएगा परन्तु अब काम के लिए सुबह ही जगाया जा रहा है ।"

बुन्हें धीरे शहरा ऊझे गढ़ा मनाली ।
खाणे बे देणा कोणक चाउल झूरी लोड़ी इजती आली ।

"नीचे शहर और पीछे मनाली गढ़ है । खाने के लिए गेहूं और चावल (अच्छा भोजन) देंगे परन्तु प्रेमिका इज्ज़त वाली होनी चाहिए ।"

बागा हांधरे धौरटू फेर फीरदा गेरू ।
टोलकू पांधे केरी बेशणा, झीफा नी जोंदरे हेरू ।

"बगीचे में घर है और घर के चारों ओर गेरू (लाल पदार्थ) लगाया गया है । हे प्रेमी ! तु पत्थर के ऊपर बैठ क्योंकि झाड़ियों में तू दिखाई नहीं दे रहा है ।"

पारे धीरे ज़ीया रा पौधरू ओरे सोमसी कौहू ।
कूलू लागा दुशहरा कोम केतरा रौहू ।

"उधर ज़िया का मैदान है और इधर शमशी कोहू। कुल्लू का प्रसिद्ध दुशहरा आरम्भ होने वाला है, अभी काम कितना बाकी है ?"

बाही कौकड़ी हुई घंघेरी।
हांऊ चौलू केलू रे जंगला आपणी ज़िदगी केरी।

"बीजा खीरा और उपजी घंघेरी (कद्दू की किस्म)। मैं तो देवदार के जंगल में काम पर जा रहा हूं तू अपने जीने की करना।"

उथड़ी धारा-न माटे भौरुई रेला।
तेबे सराहनू बाबा रा गाबरू, घाटी-न हौथड़ू देला।

"ऊंची धार पर मिट्टी से रेलें भरी हैं। तब मैं तेरी प्रशंसा करूंगी जब तू मुसीबत के समय मेरी सहायता करेगा।"

उथड़ी धारा-न महीन बरूरुआ माटा।
सेभे सुख सी आपणे कूलू-न, कौसी नी गला रा घाटा।

"ऊंची धार पर बहुत बारीक मिट्टी है। अपने कुल्लू में सभी सुख उपलब्ध हैं, किसी भी बात की कमी नहीं है।"

वाह वाह सोमसी पौधरू वाह वाह नागणी धारे।
जगह कंडी उज़ली, माण्हू सरगे रे तारे।

"शमसी का मैदान तथा नागण धार दोनों रमणीय हैं। यहां की जगह बहुत उजली है और आदमी बहुत सुन्दर हैं।"

चितरा पौटू दाउणी कातो कतीरे।
बाहरे निकल़ तिन्हारी खाणीएं फीमे रे सौउदी फीरे।

"चित्रित पट्टू के किनारे चिमटे द्वारा काटे गए हैं। ज़रा बाहर तो निकल, देख अफीम के व्यापारी आए हैं।"

फूल निभे फूलिया भौर फूलला कूजा।
तौ संघे नी बोणदी व्याह केरना दूजा।

"और फूल तो खिल कर झड़ भी गए हैं लेकिन कूजे का फूल पूरी तरह खिला है। क्योंकि तेरे साथ मेरी बनती नहीं, इस लिए मैं तो दूसरा विवाह करूंगा।"

खोरी रोपा री माहुरी दड़के रोपा रा जाटू।
ऊझी बौसी बोला नगरा, की तें फायदा बाटू।

"खोरी रोपा का माहुरी धान तथा दड़के रोपा का जाटू धान प्रसिद्ध है। तुझे उझी नगरी में शादी करके क्या फायदा मिला।"

हेठे माहुल पीछे बोहर बागा।
पहले नी थी आँधी हौंछीए भालदा, ऐबे कीबे गला ढुणदा लागा।

"नीचे माहुल गांव और पीछे बोहरबागा गांव स्थित हैं। पहले तो तू आधी आंख से भी नहीं देखता था परन्तु अब बातें क्यों कर रहा है।"

हौरी नगाली री बिशली बजांदे बजांदेया फूटी।
दूरा पारली झूरी हौंस लोड़ो हौंसदेया चूटी।

"हरी निरगाल की बांसुरी बजाते-बजाते फट गई। बहुत दूर लगा प्रेम यदि हंसते-हंसते टूट जाए तो अच्छा है।

कौहू धारा रा मौगरू भेखली धारे री तीके।
खरी जोई परांदे परांदेया, घौर लोड़ी कुटलू बीके।

"कहूधार का पानी का चश्मा भेखली धार के सामने है। अच्छी पत्नी ढूंढते ढूंढते घर और जमीन भी बिक जाएं तो कोई बात नहीं।"

चूंजीया काउड़ा चोढ़ीया मनाला।
खोपरी मथाला नी बौसणा, घौंठ सी छलाई रे नाला।

"कौए की चोंच और मृनाल पक्षी की चोटी लम्बी होती है। खोपरी तथा मथाला गांव में शादी न करना क्योंकि आटा पीसने की चक्कियां छलाई नाले में (अर्थात बहुत दूर) हैं।

उथड़ी धारा–न जोड़ा बराघे रे बचे।
दस दुनियां देई बोलणे, दिल लोड़ी दुहीरे सचे।

ऊंची धार पर जुड़वां बाघ के बच्चे हैं। दुनियां को बोलने दो, दोनों के दिल में सच्चा प्यार होना चाहिए।

ओरे लाहुला पोरे लाहुला तोंदी।
तू एजी पाणी वे हांऊ आई झीकड़ू धोंदी।

"इधर लाहुल तथा उधर तोंदी गांव स्थित हैं। तुम पानी के लिए आ जाना मैं कपड़े धोने आऊंगी (तब मुलाकात होगी)।"

भेड़ा चारी पुहाले, चारी उथड़े टीले।
खरी झूरी न्हौसी मेली, माड़ी नी बेशदी दिले।

"गडरिये ने ऊंचे टीले पर भेड़ें चराईं। सुन्दर प्रेमिका मिल नहीं रही है और असुन्दर प्रेमिका दिल को पसन्द नहीं आती।"

ढौगा चौरली बौकरी, फाटा चौरला वीणा।
खाणा लाणा थी शोभला, रौहू केतरा जीणा।

"पहाड़ पर वकरी चरेगी तथा धार पर कस्तूरा। अच्छा-अच्छा खाना पहनना था क्योंकि जिन्दगी का क्या पता कव समाप्त हो जाए।"

शेते तेरे दोंदड़ू लाल मासुई गीयां।
झूरी लागी दूरा-न हेरीदी, मन सा मारना कीहां।

"सफेद तेरे दान्त हैं और उनके ऊपर लाल-लाल मसूड़े। प्रेमिका दूर से दिखाई दे रही है। अव मेरे लिए मन मार कर वैठना मुश्किल है।"

बून्हे शहरा ऊझे भेखली धारा।
एबे हेरी घौरा-बे एंदा, कोम सा निभीरा सारा।

"नीचे शहर तथा ऊपर भेखली धार गांव स्थित हैं। अव घर न आना क्योंकि अव सारा काम समाप्त हो गया है।"

धारा पांधली विहुली नाला कोती जालाड़ी।
गरीबे री शोहरी धीनी सड़का रूलणे, अमीरी पाई घौरा बे लाड़ी।

"विहुल का पेड़ धार पर है और उसकी जड़ें नाले में खोदी जा रही हैं। गरीव की लकड़ी को तो सड़क पर भटकने के लिए छोड़ दिया और अमीर की लड़की से विवाह कर दिया।"

औधा-न टपला गाहणे औधा-न टपला टापे।
दुई ज़बाने बोली उथड़े निशटे, झूरी सा चुटणा आपे।

"आधी नदी पैदल तथा आधी पत्थरों के ऊपर पैर रख कर पार की। दो शब्द ऊंचे-नीचे वोल देना, प्रेमिका का प्रेम अपने आप टूट जाएगा।"

नौई खदली खाड़े बौहली गेली।
पहले होंडा थी संगे, एबे लागी होंडदी केल्ही।

"वाढ़ आने के कारण नदी का पानी मटमैला हो गया है और साथ में वह लकड़ी के ठेले वहा कर ले जा रही है। पहले तो तू साथ चलती थी लेकिन अव अकेली चलने लगी है।"

ठांडे पाणी रा डिभणू भौरी भौरूआ जोंके।
जुण झूरी थी बोलणा शोभली, सो लाई पतारनी लोके।

"ठंडे पानी का डिभणू (छोटे गढ़े में भरा पानी) जोकों से भरपूर है। जो भी प्रेमिका सुन्दर होती है, उसे लोग ले जाते हैं।"

छोड़ी चौले घाहावे ढाका-न बोन्हणी रौशी।
एक शाहुरा लाणा फेटे बांल्हा-न दुजा शाहुरा पौशी।

"लकड़ी तथा घास लाने जा रहे हैं और कमर में रस्सी वांधी है। एक ससुराल तो वाल्ह के मदानी इलाके में लगाएंगे और दूसरी पौशी गांव में।"

ऊभे धीरे चेशटा बुन्हे शकाड़ू री कोठी।
माण्हू रौहा सी औलदे फौलदे, ठेउड़ू डाहणे सोठी।

"ऊपर चेशटा गांव तथा नीचे शकाड़ू की कोठी है। आदमी मरते और जन्म लेते रहते हैं। इसलिए ठहरने की जगह सोच कर रखनी चाहिए।"

फेटी बाल्हे री कोणक मुछी मुछिया लेगी।
ओरे पोरे बेठे लौगे रे छोकरे मुंझे झगड़ू नेगी।

"मैदानी बाल्ह इलाके की कणक का आटा गूंथ-गूंथ कर भी गीला रहता है। इधर-उधर लग घाटी के जवान बैठे हैं और बीच में झगड़ू नाम का नेगी बैठा है।"

गाश लागा शरीहरू, टीपू टीपू रे ढाले।
बौता शौगे बौतेरे बताहलू, बोणा शौगे गोरू गुआले।

"बूंद-बूंद करके बारीक वर्षा हो रही है। इस वर्षा ने रास्ते में मुसाफिरों को और वन में ग्वालों को भिगो दिया है।"

हेठे धीरे माहुल पीछे नेगी रा सुआ।
खाणा लाणा देई डिगणे, सुख लोड़ी जानी बे हुआ।

"नीचे माहुल गांव तथा पीछे नेगियों का सुआ गांव स्थित है। जान को सुख होना चाहिए, खाने पहनने के लिए चाहे जैसा भी मिले।

बुन्हे छारशू पीछे बोहर बागा।
नीती-बे नी झूरदा, शोभा बे झूरदा लागा।

"नीचे छारशू गांव तथा उपर बोहरबागा गांव स्थित है। स्वभाव को तो प्रेम नहीं करता रूप से प्रेम कर रहा है।"

उथड़ी धारा-न लोमी लबोहड़ रौईए।
बीछू ढौकणे री नी संख्या, सर्प ढौकदी पौईए।

"ऊंची धार पर लम्बे-लम्बे रई के पेड़ हैं। बिच्छू तो तू पकड़ नहीं सकती है, सांप पकड़ने चली है।"

हाटा भौकी हाठली, बागा भौकी बगाणी।
एबे सा आमा बापू रा देइरा, फीरी भौरला लोका रा पाणी।

"इधर हाट बाजार तथा उधर बगीचे जल गए हैं। अभी तो तू अपने माता-पिता का कमाया खा रहा है, फिर लोगों का पानी भरता फिरेगा।"

दुनिये खाई दुध-मलाई, म्हारे आई हिस्से-न छाह।
डीछी बेचिया आणू लूण तेल, कौमे आऊ निकली शाह।

"दुनिया ने तो दूध-मलाई खा ली और हमारे हिस्से में लस्सी आई है। लकड़ी बेच कर तो नमक लाते हैं और काम करते जान निकल रही है।"

तनखाह खांदी लागी दुनिया, म्हारै आई निकली जान।
किता लोड़ी मारू हौल कदाल, किता खोंजी पथरा री खान।

"दुनियां खूब वेतन ले रही है और हमारी (काम करते-करते) जान निकल रही है। या तो हल और कुदाल चलाने चाहिए या पत्थर की खान निकालनी चाहिए।"

ऊझे माहुल बुन्हे पौई टकोली।
वज़न हेरिया हेरी भूलदा, दिला रा वज़न तोली।

"ऊपर माहुल तथा नीचे टकोली गांव पड़ते हैं। शरीर का वज़न देख कर न भूलना दिल का वज़न तोलना।"

बुन्हे धीरे छानी रा नगर ऊझे घाउणी बागा।
हेरी एज़ी कुलू कनाउरा, न्हाई एज़ी लूदरनागा।

"नीचे छानी का नगर और ऊपर घाउणी बागा स्थान स्थित हैं। कुल्लू कनावर देख आना तथा लुदरनाग तीर्थ भी नहा आना।"

ऊझे धीरे बोलणा खोखण बुन्हे भूइण हाटी।
देश खाऊ सूरे आंबले माण्हू खोए पौढ़ने घाटी।

"ऊपर खोखण गाव तथा नीचे भूइण की दुकानें हैं। इस सूर (नशीला पदार्थ) के अमल ने देश खा लिया है और इसी कारण लोग पढ़ भी नहीं सके हैं।"

फूल निबरू फूलिया भर फूलला आरू।
तुसे एज़ी दूही बहणीए, आसे आए दूहे भरारू।

"और फूल तो खिल कर समाप्त हो गए हैं परन्तु आड़ू का फूल यौवन पर खिला है। तुम दोनों बहनों ने आ जाना और हम भी दोनों भाई आ जाएंगे।"

पौधरे छेता-न डूंघे भौरने बौगे।
होर थी जाइरे बणी ठणियां, लोके मुँझ सड़का ठौगे।

"समतल खेत में गहरे वौगे (पानी के निकास के लिए रास्ते) डालने चाहिए। वैसे तो तुम वन-ठन कर गए थे परन्तु लोगों ने बीच सड़क में ठग लिया।"

रोपड़ी री बेउड़ी बौमी गोंभरू पौज़ू।
खाइया नाईं तिन्हारी खाणीए हेरी हेरिया रौज़ू।

"रोपड़ी गांव के किनारे मोटे छिलके वाला गलगल उपजा है। खा कर नहीं, देख देख कर ही सन्तुष्टि हो गई है।"

बून्हे धीरे बज़ौरा पीछे रोपड़ू टाला।
मिशे नी मौरदा बेइरी, भूखे नी पौकदी साला।

"नीचे बजौरा तथा ऊपर रोपड़ू टाला स्थान हैं। गुस्से से दुश्मन नहीं मरता और न ही भूख लगने पर फसलें पकती हैं।"

सिंघे मुखिए कांगणू नारसिंघिए तोड़ा।
खाखीए ढुण कथा काहणी, हौथे केर कोमा रा छोड़ा।

"सिंह के मुख वाला कंगन तथा नरसिंह मुख वाला तोड़ा पहना है। मुंह से वात जरूर कर लेकिन हाथ से काम भी जल्दी करती जा।"

राजा बेठा बांगले राणी बेठी झ़रोखे।
बाहरे निकल वागे रे मालीया, फूल नेऊ पाखले लोके।

"राजा बंगले में तथा रानी खिड़की में बैठी है। हे वाग के माली, बाहर निकल कर देख फूल को अजनवी ले गया।

बाल्हा लागी रुहणी गौहरा लागी 'जुआरी।
किता हेरी झ़ूरी-न ढौकिदा, किता लोड़ी उमर वारी।

"बाल्ह क्षेत्र में धान की रोपाई तथा पर्वतीय क्षेत्र में जुआरी लगी है। या तो प्रेमिका का पल्ला न पकड़ना यदि पकड़ लिया तो सारी उमर साथ देना।"

खाड़े सेऊरे तख्ते भूइण सेऊरे पौजे।
थोड़ा झ़ूरना झ़ूरीए, बोहू लोके री लौजे।

"अखाड़े के पुल में तख्ते तथा भूइण पुल में बड़ी-बड़ी शहतीरियां लगी हैं। थोड़ा प्रेम तो प्रेम के कारण तथा वहुत लोक-लाज के कारण करना है।"

बूटी झ़ालरू ठींगरी पौकला कौहू।
दिल लागा होरी संघा-न ग्रां नी एणे बे रैहू।

"झालरदार वृक्ष की चोटी पर कौहू फल पका है। दिल किसी और के साथ लग गया है। इस लिए (शर्म के मारे) मैं अपने गांव भी नहीं आ सकता।"

फूल निभे फूलिया भौर फुलला तेजू।
सूना जूही रा हारटू कौकड़ी जालदा भेजू।

"और फूल तो खिल कर समाप्त हो गए हैं परन्तु नेजू फूल पूरी बहार में है। सूना जूही फूलों की माला दिल जलाने के लिए भेजी है।"

भेड़ शींगणू लाहुल चौरली नीरू।
किता केरी झ़ूरीए झ़ूरना किता लोड़ी हौउल फीरू।

"सींगों वाली भेड़ लाहुल में नीरू नामक घास चरेगी। हे प्रेमिका! या तो मुझे प्रेम करना या तुझे बेहोशी के चक्कर आ जाएं।"

छौह फुटा री लकड़ी, दसा फुटा री कड़ी।
लोके लाए काटणे बौरश, म्हारे न्हौसी काटुई घड़ी।

"छः फुट की लकड़ी और दस फुट की कड़ी है। लोग तो सालों गुज़ार देते हैं और हम से एक घड़ी भी नहीं विताई जाती।"

महा देऊरी सौहा-न चित–बितरा कीड़।
कीता लोड़ी रीती रा शोभला, किता लोड़ी हेरना चोड़ू।

"महादेव के मन्दिर के आंगन में चितकवरा कीड़ा है। या तो स्वभाव का अच्छा होना चाहिए या देखने में सुन्दर होना चाहिए।

बाही घांघड़ी खाई गौहरी रीछी।
जेबे लांघू जालोड़ी रा जोतड़ू फेरी नी भालना पीछे।

"घांघड़ी (अन्न विशेष) वीजी थी जिसे पर्वतीय क्षेत्र के भालू खा गए। जव जलोड़ी का जोत पार कर लिया तो पीछे भी नहीं देखेंगे।"

चितरा चाधरू बुणू लाहूली रौछे।
छाती जौली तेईरी जेबे हेरुई लोके रे कौछे।

"चित्रित पट्टू लाहुली प्रकार की खड्डी में बुना गया है। उसकी छाती तव जल गई जव उसने देखा कि उसकी प्रेमिका किसी दूसरे की वगल में वैठी है।"

फूल फूला-न शोभला फूल बरासा रा रौता।
होर सा सेभी गला रा तकड़ा, दिल गोऊ मना रा तौता।

"सभी फूलों में वरास का लाल फूल सुन्दर है। और तो वह सभी वातों में तेज़ है लेकिन गर्म तवीयत का है।"

सूने जूही रा झुमकू शोभला, मौथे पांघली बींदी।
कोना पिछला डोल्हरू झूरीए, मूले देली की सींधी।

"सूनेजूही का झुमका तथा माथे की विन्दिया वहुत सुन्दर हैं। कान में लगाया फूल, हे प्रेमिका! कीमत पर देगी या मुफ्त में।"

शिल्हे नाल-न टुंडी बाठी कलेशी।
लोभी एणा सा पाहुणे भौता बे चांबड़ू हेशी।

"शिल्हे नाले में लंगड़ी क्लेशी (पक्षी विशेष) वोल रही है। प्रेमी तेरा महमान आएगा इस लिए भात के लिए पतीलू चढ़ा देना।"

बालू सूना रा हीरा लागा परोजा।
तुसे बोणा झुपणू आसा बे रस्ता खोजा।

"वालू सोने का है और उसमें हीरे का परोज़ा लगा है। आप मार्गदर्शक वन कर हमें रास्ता बताओ।"

खीर गंगा रा पौधरू ज़ाणे मलाणे री तीके।
सोंगे रे शोटे मुँझ सड़का, आपू घौरा-बे सोके।

''खीर गंगा का मैदान ज़ाणे मलाणे के सामने पड़ता है। साथियों को बीच सड़क में छोड़ दी और अपने आप घर को चल पड़े।''

पेछे ढौगे री बांदरीए हौरे कोलथ खांदी।
कोलथ खाए बांदरीए घौरा हेरी झगड़ा पांदी।

''पेछे पहाड़ पर की बंदरिया ने हरे कोलथ खा लिए। हे बंदरिया कोलथ तो तूने अब खा ही लिए अब घर जा कर झगड़ा न डालना।''

हेठे रुजग पीछी कड़ौन नेरी।
घौर भौरुग्रा पाहुणे, यांद बिसरी तेरी।

''नीचे रुजग गांव तथा पीछे कड़ौंन नेरी गांव स्थित हैं। घर तो मेहमानों से भर गया लेकिन तेरी तो मैं याद ही भूल गया।''

ग्रोरे धीरे भूइण पोरे पोऊ बशोणा।
आले धागे रा देणा मुसका बखे नी जानी-न खोणा।

''इधर भूइण तथा उधर बशोणा गांव स्थित हैं। उसे थोड़ा सा नुकसान ही पहुंचाना बिल्कुल जान से नहीं मारना।''

फागू ढौगा री फागड़ी शुरू ढौगारी शामी।
मुहाले बे जाई केल्हिए लंकावे पूजू हामी।

''फागू पहाड़ पर फागड़ी तथा शुरू पहाड़ पर शामी उगी है। मुहल्ले वाले दिन तुम अकेली चले जाना लंका वाले दिन मैं भी पहुंच जाऊंगा।''

उझे नगर बून्हे मारम कौहू।
पहले लाई थी हौथा न ढौकिया पुछणी, एबे नी बौकत रौहू।

''ऊपर नगर तथा नीचे मारम कौहू स्थान हैं। पहले मैं तुझे हाथ पकड़ कर पूछ रहा था, अब तो समय निकल गया है।''

ओरे धीरे बाशंग पोरे धीरे बबेली।
सरकारे री थी बोलणा नोकरी, जुग्रानी नी खेलणी भेली।

''इधर बाशंग गांव तथा उधर बबेली गांव पड़ते हैं। क्योंकि नौकरी सरकार की थी इस लिए जवानी का आनन्द नहीं उठा सके।''

गेहूं गौगरे जौऊरी पिपरी हौरी।
किता बौसणा लुडबड़ांदे-बे, किता नौशणा मौरी।

''गेहूं की फसल अभी कच्ची है और जो भी हरे हैं। या तो मैं किसी सुन्दर जवान से शादी करूंगी या मर कर चली जाऊंगी।''

ठारा चुंघी ओकती बारा चुंघी जालाड़ी ।
किता छोड़ी बोणे री भाइड़ी किता घौरे री लाड़ी ।

"अठारह दवाइयां तथा वारह जड़ी-बूटियां चुनी हैं। या तो वन की प्रेमिका छोड़ देना या घर की पत्नी ।"

बूटी काइली चढ़िया बेशला गूणी ।
किता देई हां नां रा बदल, नीता लोड़ी पेऊके रूणी ।

"चील के पेड़ पर लंगूर चढ़ कर बैठेगा । या तो हां या नांह में जवाब दे देना, अन्यथा मायके में रोती रहेगी ।"

शिल्हे नाला-न कोदरा चुंघणा दोली ।
तू एजी शौइरी साजे बे हांऊ डाहनू सूरे री चोल्ही ।

"शिल्हे नाले में दोली कोदरा चुनेंगे । हे प्रेमी ! तुम सैरी संग्रांत को आ जाना मैं तुम्हारे लिए सूर (मादक पदार्थ) की सुराही रखूंगी ।"

ओरे ढाढग पोरे लिहाले री लाही ।
नूएं धाने री केरी नौउली, म्हारे लोड़ी बांडे री डाही ।

"इधर ढाढग तथा उधर लिहाल की लाही नामक स्थान हैं। जब नए धान के चावलों का भात पहली बार बनाओगी तो हमारे हिस्से का भी रखना ।"

रूपा रा बुभणू भणागा लागला मरीना ।
खरी केरी जिंदगी लोभीया मेरे नी काटिदा म्हीना ।

"चांदी का बुमणू (आभूषण) है और उसमें धागा मरीने का लगा है। हे प्रेमी, ज़िंदगी खुशहाल बनाना अन्यथा मुझसे महींना भी नहीं काटा जाएगा ।"

छीटे री चोली दाउण काटी कतीरे ।
थोड़ी भाली हाटी बज़ारा-न बोहू लोभी री धीरे ।

"छींट की कमीज़ है जिस के किनारे चिमटे से काटे गए हैं । थोड़ा हाट-बाज़ार में ढूंढ लेना और अधिक प्रियतम के घर में ।"

जौऊ री लाई सूर पिछे न पाई ढेली ।
सोंझके आऊ पाहुणा खाणे बे की चोकण देली ।

"जौ की सुरा बनाई है उसमें ढेली (नशेदार दवाई) मिलाई गई है । यदि मैं शाम को तेरा मेहमान आ जाऊं तो खाने के लिए सलूना क्या देगी ।"

चितरा चाधरू पींऊली पाइरी छीहा ।
झूरीए केरू चूटणा रांध खाणी पंदरा बीहा ।

"चित्रित पट्टू में पीली लाइनें डाली गई हैं । क्योंकि प्रेमिका का दिल तो मुझ से टूट गया है इस लिए मैं तो पन्द्रह बीस (अर्थात् तीन सौ रुपये) हर्जाना लूंगा ।"

उथड़ी धारा-न जोड़ा सींहा रे बच्चे।
सियाणे लागे बरीदीदे, याणे बरीदीदे सच्चे।

"ऊंची पर्वत शिखा पर शेर के जुड़वां बच्चे हैं। जब बूढ़े ही प्रेम में पागल होने लगे हैं तो जवानों का प्रेम में पागल होना तो उचित ही है।"

बून्हे शहरा ऊझे पोई बबेली।
माहुल जाचा बे नी एजिदा, भूइण लोड़ी जाचा बे मेली।

"नीचे शहर तथा पीछे बवेली स्थान पड़ते हैं। माहुल मेले को तो मैं आ नहीं सकता। हां, भूइण मेले को अवश्य मिलना।"

गौगरे गेहूं बे तीछी लागली दाची।
छ्केके केरी हां नां रा बदल् मेरी सा उमर काची।

"हरे गेहूं के लिए तेज़ दरान्ती लगेगी। हां या न में जल्दी जवाब देना, क्योंकि मेरी उमर अभी कच्ची है।"

होछी रीढ़ी काइली लोमी रियासे री रौई।
दूही ज़ानीए झूरना केल्हे की गरज़ पौई।

"छोटे चील तथा बड़े रई के पेड़ से लकड़ियां काटी हैं। यदि प्रेम करना है तो दोनों को करना चाहिए। अकेले को प्रेम करने की क्या ज़रूरत है।"

नीलीए चीड़ीए कोल्ह सेउरे थुहे।
नेड़ आसा मिलणा सदा-बे लोका लोड़ी बैरी हुए।

"हे नीली चिड़िया तूने पुल के खम्बे में अपना घौंसला बनाया है। हम सदा के लिए मिलेंगे चाहे लोग वैरी हो जाएं।"

केलू काइली रे ज़ंगला, रौई रे केरे रूमे।
आपणी धोनी डिगणे, होरी री ढौकी कुमे।

"देवदार तथा चील के जंगल में रई के ठेले बनाए हैं। अपनी प्रेमिका को तो छोड़ दिया दूसरे की प्रेमिका को दोनों हाथों से पकड़ लिया।"

शेते दोंदड़ ओठड़ बेठे मलाउए।
लोका लोका री झूरी न्हौठी चुटिया, मेरी सा बेशोरी दाउए।

"सफेद दान्तों को दोनों होठों ने मिल कर ढक दिया है। लोगों की प्रेमिका तो बिछुड़ गई परन्तु मेरी प्रेमिका किसी कारणवश अभी बैठी है।"

फेटी वाल्हे री कोणक, मूछी-मूछिया लेगी।
आघे थी तू बाल्हा रा लम्भर, एबे मराज़ा रा नेगी।

"मैदानी वाल्ह इलाके की कणक का आटा गूंद-गूंद कर भी गीला ही रहता है। पहले तो तू वाल्ह का नम्बरदार था परन्तु अब महाराजा इलाके का नेगी है।"

पाणी आणू पणिहारनीए, दूई चकोरीए पीऊ।
तें केरू लोका रा भला, लाख लोड़ी बौरश जीऊ।

"पानी लाया पनिहारिन ने और उसे पी गई दो चकोरियां। क्योंकि तूने लोगों का भला किया है इस लिए तेरी उमर लाख वर्षों की हो।"

पाणी आणू पणिहारनीए झकमकड़े लोटे।
छेके केरी दान पुन मेरी झूरीए, तेरे आए ज़ानी बे झोटे।

"पनिहारिन ने चमचमाते लोटे में पानी लाया। हे प्रेमिका! जल्दी से दान-पुण्य करना क्योंकि तेरी जान के लिए खतरे आ गए हैं।"

सेरी बेढ़ा री कोणक लहाशणी बोणा रे दाड़ू।
मेरी तेरी लोड़ी दिला-न बेठी, लोका रे खाए छराड़ू।

"सेरी वेढ़ की कणक तथा लहाशनी वन के दाड़ू प्रसिद्ध हैं। लोगों की परवाह न करना। वस हम दोनों के दिल मिलने चाहिए।"

हाटा भौकी हाटली बागा भौकी बगाणी।
होर ता थी शोभली, एकी गोई टेंडे री काणी।

"इधर हाट का बाज़ार तथा उधर वाग-बगीचे जल गए हैं। वैसे तो देखने में सुन्दर है लेकिन एक आंख से कानी है।"

भेखली धारा रा होंडण, हुंडी हुंडिया फारा।
म्हारे लोड़ी आई कूलू बे, मेली लोड़ी खाड़े वज़ारा।

"भेखली धार की खड़ी चढ़ाई चल चल कर खत्म नहीं होती। हे प्रेमिका! हमारे कुल्लू आना और मुझे अखाड़ा बाज़ार में मिलना।"

घौर चीणू चनाहड़े, फेर फीरदी तीरी।
तू आणी लोभीया ठंडे पाणी रा लोटकू, ठाण्डी लोड़ी कौकड़ी फीरी।

"मिस्त्री ने घर वनाया है और चारों ओर खिड़कियां डाली हैं। हे प्रियतम! तुम ठण्डे पानी का लोटा लाना जिसे पीने से दिल ठण्डा हो जाए।"

हौथा मसाइण कौछा भौरू रेटू।
आघे थी लोभी गौला रा घुंघरू, एबे मोंझ सड़का शेटू।

"हाथ में मसाइण (ऊन वाटने की वड़ी तकली) तथा बगल में अट्टी दवाई है। पहले तो तुझे प्रेमी गले का घुंघरू था अब क्यों बीच रास्ते में छोड़ दिया है।"

दोहे लिखे लामण, लोभीए भेजे सरोया।
दिहाड़ी पौढ़ी कताबा-न, राती सोठी साथरे सोया।

"दोहे और लामग लिखे हैं जिन्हें प्रियतम ने सजा कर भेजा है। दिन को पुस्तक में पढ़ लेना और रात को विस्तर पर मनन करना।

64278

पहाड़ी भाषा : कुलुई के विशेष संदर्भ में

लेखक : मौलूराम ठाकुर

पृ० ३२८, मूल्य रु० ४०-००

If I were to swear in the Court of Law, I would declare that the book 'is Indian nation's pride'. It has revealed to me new worlds of linguistic possibilities of which I had never dreamt before... I am thrilled to read the remarkable diphthongish construction in 'Numbers', marvels of comparison in connection even with a single word 'गोली', outstanding peculiarities in pronominal adjectives, brilliant and thought-provoking examples of coordination and processive demonstration .. a book in the regular 'स्वाध्याय' of which I consider my 'जन्मसाफल्य'. It seems that this book in some respects, is a novelty for the degenerated atmosphere of this country.... Had such a book appeared in Soviet Land, only Heaven could count the number of teams which would be organised for the discussion of the various thrilling phenomena set forth in this book.

—Padma Bhushan Dr. Siddheshwar Varma.

हिमाचल प्रदेश में ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर अनुसन्धान करने के साधनों का अभाव सा है। वहां अन्य विद्या-केन्द्रों की सी सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। अनेक बाधाओं के रहते हुए भी यदि श्री मौलूराम ठाकुर जैसे कुछ विद्वान अपनी साधना में रत हैं तो यह कोई साधारण बात नहीं .... पश्चिमी पहाड़ी की कुछ एक बोलियों पर थोड़ा बहुत कार्य अवश्य हुआ है, किन्तु समग्र रूप में केवल प्रस्तुत पुस्तक में ही साँगोपांग अध्ययन आ पाया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक आने वाले शोधार्थियों का पथ-प्रदर्शन करती रहेगी और इसका ऐतिहासिक महत्त्व युग-युग तक बना रहेगा...... पुस्तक के पहले भाग के तीसरे और चौथे अध्यायों में अत्यन्त युक्तियुक्त ढंग से पहाड़ी भाषा के उद्भव, विकास और स्वरूप पर ज़ोरदार निष्कर्ष निकाले गए हैं। दूसरे भाग में कुलुई का वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक दोनों पद्धतियों से भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है... जो उपादेय और ज्ञानवर्धक है। पहाड़ी भाषा के अध्ययन के इतिहास में लेखक का नाम युग-युग तक स्मरणीय रहेगा।

—डॉ० हरदेव बाहरी

Jacket Printed at Bhartendu Press, Simla
Phone : 3452